शुष्क एवं अर्द्ध-शुष्क क्षेत्रों में फलोत्पादन

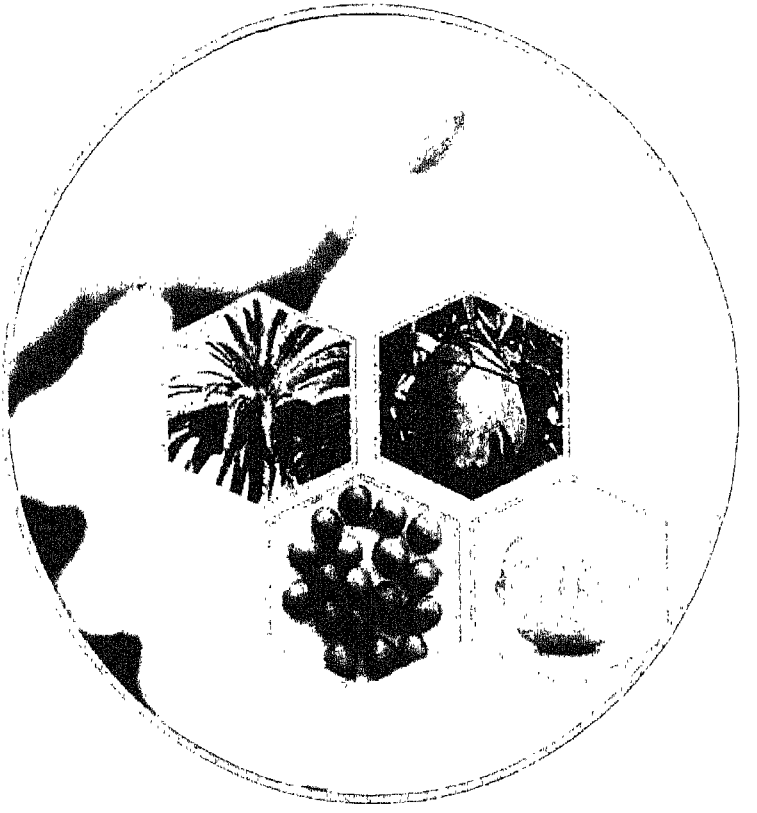

❖ बीरबल ❖ बी. एस. राठौड़ ❖ एन. एस. नाथावत ❖ एम.एल.सोनी ❖ सीमा भारद्वाज

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	शीर्षक	पृष्ठ सं.
1	शुष्क क्षेत्रिय फलों का मानव आहार में महत्व	1–4
2	गर्म शुष्क क्षेत्र हेतु फल वृक्ष आधारित कृषि वानिकी	5–10
3.	फलदार पौधों की प्रवर्धन तकनीकें	11–14
4	फलोत्पादन हेतु मृदा प्रबन्धन : महत्व एवं तकनीकियाँ	15–18
5	फलोत्पादन में जल प्रबंधन	19–22
6	पादप पोषक तत्व प्रबंधन – घटक महत्व एवं विधियाँ	23–27
7.	फलों के मुख्य कीट एवं नियंत्रण	28–37
8	फलों के प्रमुख रोग एवं उनका एकीकृत रोग प्रबंधन	38–42
9.	फल वृक्षों मे कटाई–छंटाई का महत्व	43–48
10.	फलोत्पादन में पादप वृद्धि नियंत्रक : महत्व तथा विधियाँ	49–53
11.	फल वृक्षों की सघन खेती	54–59
12.	बेर उत्पादन प्रौद्योगिकी	60–62
13.	आंवला की बागवानी	63–66
14.	नींबू वर्गीय फलों की उत्पादन तकनीक	67–70
15.	खजूर की खेती	71–80
16.	बेल की उन्नत बागवानी	81–88
17.	अनार की खेती	89–94
18.	गुन्दा और लसौड़ा की खेती	95–96
19.	करौंदा एवं फालसा की खेती	97–99
20.	फल परिरक्षण का महत्व एवं लाभ	100–105

शुष्क क्षेत्रिय फलों का मानव आहार में महत्व

बी.आर. चौधरी एवं आर.एस. सिंह

केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर

मनुष्य को स्वस्थ रहने के लिए एवं उसके द्वारा विभिन्न कार्य संपादित करने के लिए उसे विभिन्न प्रकार के पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। आहार में पाये जाने वाले पोषक तत्वों को हम मुख्य रूप से प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, खनिज तथा विटामिन्स में बांटते है। फलों में ये सभी पोषक तत्व पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं। इसलिए इनको परिरक्षी आहार भी कहते हैं। शुष्क क्षेत्रों में लगाये जाने वाले फल जैसे ऑवला, अनार, बेर, खजूर, लसोड़ा, फालसा, जामुन, बेल इत्यादि भी पोषक तत्वों से भरपूर होते हैं। इनका समुचित मात्रा में सेवन करने से कई बिमारियों से मुक्ति मिल जाती है। इन फलों से प्राप्त होने वाले प्रमुख पोषक तत्व तथा उनके कार्य निम्नलिखित है।

प्रोटीन – प्रोटीन शरीर में चोट या घाव आदि की क्षतिपूर्ति के लिए, बच्चों की वृद्धि के लिए तथा गर्भावस्था के दौरान भ्रूण के विकास के लिए आवश्यक है। ऊतक तथा कोशिका बनाने में प्रोटीन की मुख्य भूमिका है। यह खजूर तथा करौंदा में प्रर्याप्त मात्रा मिलती है।

कार्बोहाइड्रेट – यह शरीर में ऊर्जा का मुख्य स्त्रोत है। अधिकांश फलों मे फल शर्करा जैसे डेक्सट्रोज, फ्रक्टोज आदि प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। ये ऊर्जा के रूप में बदलकर शरीर को शक्ति प्रदान करते हैं। खजूर तथा बेल कार्बोहाइड्रेट के अच्छे स्त्रोत हैं। पाचनशील कोर्बोहाइड्रेट के अतिरिक्त कुछ अपाच्य कार्बोहाइड्रेट जैसे सेल्लूजोज, हेमीसेल्यूलोज, पेक्टिन, लिग्निन आदि भी पाये जाते हैं जिनको खाद्य रेशा की संज्ञा दी जाती है। रेशा का पाचन तंत्र में पाचन तो नहीं होता लेकिन इसका आंतों को साफ रखने में काफी योगदान होता है।

खनिज लवण – हमारे शरीर में बहुत से खनिज तत्व पाये जाते हैं जो शरीर के स्वस्थ संचालन तथा उचित वृद्धि के लिए आवश्यक होते हैं। दैनिक आहार में इनकी कमी से मानव शरीर में विभिन्न प्रकार की विकृतियां पैदा हो जाती है। मुख्य रूप से बढ़ते हुए बच्चों को खनिज तत्वों की ज्यादा मात्रा में आवश्यकता पड़ती है जो उनके उत्तकों की वृद्धि में सहायक होते हैं। शुष्क क्षेत्रिय फलों में पाये जाने वाले प्रमुख खनिज तत्व निम्नलिखित है।

कैल्शियम – यह दाँतों तथा हड्डियों के निमार्ण में सहायक होता है। इसकी समुचित मात्रा

के सेवन से दाँत चमक युक्त और हड्डियाँ मजबूत बनी रहती है। हृदय तथा मांसपेशियों के संकुचन और रक्त स्त्राव को रोकने में सहायक है। मनुष्य को प्रतिदिन 0.8–1.2 ग्राम केल्शियम की आवश्यकता होती है। यह आँवला, बेल, फालसा, खजूर, जामून, शहतूत तथा लसोडा में पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है।

फास्फोरस – फास्फोरस का शरीर में उपयोग कैल्श्यिम से सम्बंद्ध है क्योंकि शरीर में कैल्श्यिम हड्डियों एवं दाँतों में कैल्श्यिम फास्फेट के रूप में जमा होता है। यह कार्बोहाइड्रेट, वसा तथा प्रोटीन के पाचन में सहायक होता है। आहार विशेषज्ञों के अनुसार प्रतिदिन प्रति व्यक्ति को एक ग्राम फास्फोरस लेने की आवश्यकता होती है। यह आँवला, बेल, खजूर, जामुन, शहतूत, लसोडा, अनार आदि फलों में समुचित मात्रा में पाया जाता है।

लोहा – शरीर के आवश्यक खनिज तत्वों मं लोहा का प्रमुख स्थान है क्योंकि यह रक्त के हिमोग्लोबिन के निर्माण में भाग लेता है और कोशिकओं को ऑक्सीजन प्रदान करने में योगदान देता है। उत्तको की आक्सिकरण–अवकरण क्रिया के लिए भी आयरन की आवश्यकता होती है। आहार में आयरन की कमी होने पर रक्त के हिमोग्लोबिन का निर्माण रूक जाता है जिससे रक्त अल्पता की समस्या आ जाती है। प्रतिदिन 1.0 से 3.0 मिग्रा आयरन की आवश्यकता शरीर को पड़ती है परन्तु इतनी मात्रा के अवशोषण हेतु 20–30 मिग्रा आयरन की आवश्यता होती है क्योंकि यह 2–5 प्रतिशत तक ही अवशोषित हो पाता है। खजूर, करौंदा तथा आँवला इसके अच्छे स्त्रोत है।

विटामिन – विटामिन एक प्रकार के कार्बनिक पदार्थ है, जो आहार में बहुत अल्प मात्रा में होती है। ये शरीर की विभिन्न क्रियाओं के लिए बहुत ही आवश्यक होते हैं। अधिकांश विटामिन्स का सृजन मानव शरीर में नहीं हो पाता है अतः बाहरी स्त्रोतों से ही इनकी आपूर्ति की जाती है। फलों से कई प्रकार के विटामिन्स प्राप्त होते हैं जो निम्नलिखित है –

(1) <u>विटामिन 'ए' (कैरोटीन)</u> – यह नेत्र ज्योति के लिए आवश्यक है तथा इसकी कमी से रतौंधी, आँखों का लाल होना तथा आँखों में खुजलाहट (जीरोफ्थैल्मिया) नामक रोग हो जाते हैं। चूँकि सर्वप्रथम यह वर्णक गाजर (कैरट) से निकाला गया था इसलिए इसे कैरोटीन कहते हैं। एक प्रौढ़ पुरूष को प्रतिदिन लगभग 750 माइक्रोग्राम विटामिन 'ए' की आवश्यकता होती है। यह विटामिन फालसा, शहतूत, बेल, बेर, जामुन इत्यादि शुष्क क्षेत्रीय फलों में पाया जाता है।

(2) <u>विटामिन 'बी' समूह</u> – यह एक विटामिन्स का समूह है जो जल में घुलनशील है।

विटामिन 'बी' शरीर की उपापचयी क्रियाओं, ऊर्जा तथा कार्बोहाइड्रेट्स प्रोटीन एवं वसा के उपयोग के लिए बहुत आवश्यक है। इस समूह के निम्नलिखित विटामिन शुष्क क्षेत्रीय फलों में पाये जाते हैं।

(क) थायमिन (विटामिन बी–1) – यह शरीर में कार्बोहाइड्रेट के आक्सीकरण के लिए आवश्यक है। इसकी कमी से शरीर में कार्बोहाइड्रेट, शर्करा तथा स्टार्च आदि का सही ढ़ंग से उपयोग नहीं हो पाता है जिससे शरीर में ऊर्जा की आपूर्ति बाधित हो जातीहै। इसकी कमी से बेरी–बेरी नामक रोग हो जाता है। प्रत्येक व्यक्ति के उसकी उम्र, शारीरिक क्षमता तथा श्रम के अनुसार लगभग 0.5–2.0 मिग्रा प्रतिदिन थायमिन की आवश्यकता होती है। यह फालसा, शहतूत, बेल, जामुन आदि फलों में पाया जाता है।

(ख) राइबोफ्लेविन (विटामिन बी–2) – शरीर में ऊर्जा की आपूर्ति के लिए इसकी आवश्यकता होती है क्योंकि यह कार्बोहाइड्रेट, वसा और प्रोटीन की उपापचयी क्रियाओं से सम्बन्धित है। इसकी कमी से शरीर का भार कम होना, गले में खराश, नाक में सूजन तथा मुँह के कोनों का फटना जैसे विकार उत्पन्न हो जाते हैं। ऊर्जा की आपूर्ति के आधार पर प्रति 1000 किलो कैलोरी ऊर्जा के लिए 0.6 मिग्रा राइबोफ्लेविन की प्रतिदिन आवश्यकता होती है। यह अनार, बले, जामुन तथा खजूर में पाया जाता है।

(ग) नियासिन – यह विभिन्न जैव रासायनिक अभिक्रियाओं तथा वसा, शर्करा एवं प्रोटीन के उपापचय मे सहायक होता है। शरीर में इसकी कमी से पेलग्रा रोग हो जाता है जिसमें जीभ पर खरास हो जाती है, त्वचा पर छाले पड़ जाते हैं और डायरिया की शिकायत होती है। पेलग्रा के चलते स्नायु तंत्र में अवरोध से आदमी विक्षिप्त तथा उदास रहने लगता है। इसकी प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन 8–23 मिग्रा की आवश्यकता होती है। खजूर (सूखा), बेल, बेर तथा शहतूत इसके अच्छे स्त्रोत हैं।

(3) विटामिन सी – यह शरीर की कोशिकाओं को एक दूसरे से जोड़े रखने तथा घाव को जल्दी भरने में सहायक होता है। यह लाल रक्त कणिकाओं के निर्माण में भी सहायक होता है। इसकी कमी से स्कर्वी रोग, मसूड़ों में खून आना, दाँतों में सड़न, ह्रदय रोग तथा शरीर की रोग रोधी क्षमता घट जाती है। हमारे शरीर को प्रतिदिन 150–300 मिग्रा विटामिन सी की आवश्यकता होती है। यह आँवला तथा बेर में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

तालिका

शुष्क क्षेत्रीय फलों में पाये जाने वाले पोषक तत्व (प्रति 100 ग्राम खाने योग्य भाग)

फल	प्रोटीन ग्राम	कार्बोहाड्रेट ग्राम	उर्जा किलो/के.	कैल्सियम मिग्रा.	फासफोरस मिग्रा	लौहा मिग्रा.	कैरोटीन माईक्रोग्राम	थायमीन मिग्रा	राइबोफ्लेपिन (मिग्रा.)	नियासिन (मिग्रा.)	विटामिन सी (मिग्रा)
आंवला	0.5	13.7	58	50	20	1.2	1.2	0.03	0 03	0.2	600
बेल	1.8	31.8	137	85	50	0.6	0.6	0.13	0.13	11.1	8
खजूर (ताजा)	1.2	33.8	144	22	38	7.3	7 3	-	-	-	-
खजूर (सूखा)	2.5	75 8	317	120	50	7.3	7.3	0.01	0.01	00.9	3
जामुन	0.7	14.0	62	15	15	1.2	1.2	0.03	0.03	0.2	18
शहतूत	1.1	10.3	49	70	30	2.3	2.3	0.04	0.04	0.5	12
लसोडा	1.8	12.2	65	40	60	-	-	-	-	-	-
फालसा	1.3	14.7	72	129	39	3.1	3.1	-	-	0.3	22
अनार	1.6	14.5	65	10	70	0.3	0.3	0.06	0.06	0.3	16
बेर	0.8	17.0	74	4	9	1.8	1.8	0.02	0.02	0.7	76
करौंदा	1.1	2.9	42	21	28	-	-	-	-	-	-

गर्म शुष्क क्षेत्र हेतु फल वृक्ष आधारित कृषि वानिकी

वी.एस. राठौड़, सीमा भारद्वाज, एन.एस. नाथावत, बी.एम. यादव एवं *राकेश कुमार

*के.शु.क्षे.अ.सं., प्रादेशिक अनुसंधान स्थात्र, बीकानेर (राज.), * कृषि विभाग, झुन्झनू*

भारत के कुल भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 12 प्रतिशत (3.2 लाख वर्ग किमी) गर्म शुष्क क्षेत्र के अन्तर्गत आता है। इस गर्म शुष्क प्रदेश का 90 प्रतिशत क्षेत्र भारत के उत्तरी पश्चिमी राज्यों राजस्थान, गुजरात, पंजाब एवं हरियाणा में स्थित है। इन क्षेत्रों की अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान है तथा कृषि व्यवसाय आजीविका का मुख्य स्त्रोत है। विषम जलवायुवीय (विषम तापमान, उच्च वायु गति, अल्प व अनियंमित वर्षा, उच्च वाष्पोत्सर्जन–वाष्पीकरण दर), मृदा (न्यून जलधारण क्षमता व उर्वरता, अत्यधिक अपरदन) परिस्थितियों तथा जल संसाधनों के अभाव के कारण इस क्षेत्र में शस्य फसलोत्पादन अनिश्चित व जोखिम पूर्ण है। जहां एक तरफ इस क्षेत्र में फसलों की उत्पादकता निम्न व अनिश्चित, वहीं दूसरी तरफ इस क्षेत्र में जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ रही है। तीव्रगति से बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकताओं की आपूर्ति के लिए प्राकृतिक संसाधनों का अविवेकसंगत दोहन किया जा रहा है। इसके फलस्वरूप इस क्षेत्र के प्राकृतिक संसाधन (मृदा, जल, वनस्पतियां, चरागाह आदि) अपरदित हो रहे। इस परिपेक्ष में प्राकृतिक संसाधनों को संरक्षित रखते हुए मानव की विभिन्न आवश्यकताओ (खाधान, लकड़ी, फल, चार) की सतत् पूर्ति इस समय सबसे बड़ी चुनौती है। विशवव्यापी अनुसंधान एवम् अनुभव यह दर्शाते है कि फल वृक्ष आधारित कृषि वानिकी पर्यावरण हितैषी व प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के साथ–साथ मानव की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए एक उत्तम विकल्प है।

फल वृक्ष आधारित कृषि वानिकी एक इस प्रकार की कृषि उत्पादन प्रणाली है जिसमें फल वृक्षों तथा शस्य फसलों व घासों का सहउत्पादन किया जाता है। प्रस्तुत लेख में गर्म शुष्क क्षेत्र के लिए फल वृक्ष आधारित कृषि वानिकी उत्पादन प्रणाली की महता एवम् प्रारूपों का वर्णन किया गया है।

महता

1. **उच्च उत्पादन एवम् आय** – फल वृक्ष आधारित कृषि वानिकी को अपनाकर प्रति ईकाई समय प्रति ईकाई क्षेत्र अधिक उत्पादन एवं लाभ प्राप्त किया जा सकता है। क्षेत्र विशेष की कृषि जलवायुवीय, सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियों, कृषक परिवार के संसाधनों के अनुरूप उपयुक्त

फल वृक्ष आधारित कृषि वानिकी प्रणाली को अपनाकर उत्पादकता एवम् आय में वृद्धि की जा सकती है। बहुवार्षिक फल वृक्षों की उच्च प्रकाश संशलेषण क्षमता, फल वृक्षों व सह फसलों का मृदा के विभिन्न संस्तरों से जल व पोषक तत्व अवशोषण प्रभावी पोषक तत्व पुन चक्रण तथा बहुवार्षिक फल वृक्षों द्वारा वांछित सूक्ष्म पर्यावरणीय दशाओं की उत्पति इस प्रणाली के उच्च उत्पादन के लिए उत्तरदायी कारक है। बहुवार्षिक प्रकृति के कारण फल वृक्षों के स्थापन काल में अधिक लागत आती है। एक बार स्थापन के बाद यह निरंतर उत्पादन देते रहते है अतः स्थापन के उत्तरोतर इनमें ज्यादा लागत नहीं लगती है। अतः फलनकाल में कम लागत पर भी निरंतर आय प्राप्त होती रहती है।

2. **जोखिम व अनिश्चितता में कमी** – शुष्क क्षेत्रों में शस्य फसलोत्पादन बहुत अनिश्चित एवम् जोखिमपूर्ण हे। इन क्षेत्रों में विषम जलवायुविय परिस्थितियां (कम व अनियमित वर्षा, अत्याधिक उच्च व न्यून तापमान तेज हवाएं) उत्पादन जोखिम के मुख्य कारण है। शस्य फसलों एवम् फल वृक्षों की जोखिम–वहन क्षमता अलग–अलग होती है। फल वृक्ष आधारित कृषि वानिकी अपनाकर उत्पादन जोखिम को एकल शस्य फसलोत्पादन की तुलना में कम किया जा सकता है। शुष्क क्षेत्र में किए गए अनेक अनुसंधानों के परिणाम यह दर्शाते है सूखे जैसी विषम परिस्थितियों में कृषि वानिकी उत्पादन प्रणाली से चारा, जलाऊ लकड़ी इत्यादि प्राप्त किया जा सकता है।

3. **मानव की विभिन्न आवश्यकताओं की आपूर्ति** – फल वृक्ष आधारित कृषि वानिकी प्रणाली को अपनाकर खाधान, फल, चारा, लकड़ी इत्यादि अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकती है। उदाहरणार्थ बेर आधारित कृषि वानिकी प्रणाली अपनाकर फल व खाधानों के साथ–साथ चारा एवम् जलाऊ लकड़ी की मांग पूरी की जा सकती हे। अतः एकल फसलोत्पादन की तुलना में यह प्रणाली मानव की विविध मांगों की पूर्ति करने में सक्षम है।

4. **वर्षपर्यन्त रोजगार उपलब्धता** – शस्य फसलोत्पादन में श्रनिकों की मांग फसल की बुआई तथा कटाई के समय ज्यादा होती है तथा शेष फसल अवधि में कृषक परिवार को पूर्ण रोजगार नहीं मिलता। फल वृक्ष आधारित कृषि वानिकी में श्रमिक मांग ज्यादा व वर्ष पर्यन्त रहती है। इसके साथ–साथ फलों के परिवहन, विपणन एवम् प्रस्सकरण में भी श्रमिकों की मांग रहती है। अतः इस क्षेत्र में कृषक परिवारों को वर्षपर्यन्त रोजगार प्रदान करने हेतु फल वृक्ष आधारित कृषि वानिकी प्रणाली एक उचित विकल्प है।

5. **प्राकृतिक संसाधनों का उचित उपयोग संरक्षण** – गर्म शुष्क प्रदेशों में वायु जनित मृदा

अपरदन, मृदा जीवांश पदार्थो का हास तथा लवणीयता व क्षारीयता मृदा संसाधन के अपरदन की मुख्य समस्याएं है। फलदार वृक्षों के उत्पादन प्रणाली में समावेश से वायु–जनित अपरदन को कम किया जा सकता है। यह वायु की गति में अवरोध पैदा करके तथा मृदा सतह पर वांछित वानस्पतिक आच्छदन को प्रदान करके वायु जनित अपरदन को रोकने में सहायक होती है। मृदा में जीवांश पदार्थो की मात्रा बढ़ाने में फलदार वृक्ष अहम् भूमिका निभाते हैं इसके साथ–साथ यह मृदा मे उपस्थित सूक्ष्म जीवों की संख्या व क्रियाशीलता को बढ़ाते हैं। वातावरण में बढती कार्बनडाई आक्साइड एक मुख्य पर्यावरणीय समस्या है। इस समस्या से निजात पाने के लिए बहुवार्षिक काष्ठीय वनस्पतियों का कृषि उत्पादन प्रणाली में समावेश एक उतम विकल्प है। पौधे प्रकाश संशलेषण प्रक्रिया द्वारा वातावरण मे उपस्थित कार्बनडाई आक्साइड का स्थिरीकरण करते हैं। इस स्थिरीकृत कार्बन डाइ आक्साइड का अंश पौधे के मूल तंत्र में सग्रहित होता है। बहुवार्षिक काष्ठीय वनस्पतियाँ, एकवर्षीय शाकीय वनस्पतियों की अपेक्षाकृत अधिक मात्रा तथा अधिक गहराई पर इस स्थिरीकृत कार्बन डाइ आक्साइड को संचित करती है। शुष्क क्षेत्रों में अच्छे गुणवता वाले जल की कमी है। यहां के सतत् विकास के लिए जल का अधिकतम दक्षता के साथ उपभोग करना नितांत आवश्यक है। फलदार वृक्षों व शस्य फसलों के सहउत्पादन से जल उपभोग क्षमता बढती है। भारी वर्षा व अत्यधिक सिंचाई की स्थिति में जल का बड़ा हिस्सा भूमी की निचली सतहों में चला जाता है, इस जल का उपयोग शाकीय फसलें कम गहरे मूल तंत्र के कारण कर नहीं पाती। फल वृक्ष अपने गहरे मूल तत्र के कारण इस जल का उपयोग कर सकते हैं। अतः फल वृक्षों व शस्त्र फसलों का सहउत्पादन मृदा के विभिन्न संस्तरो में उपलब्ध जल का उचित उपयोग करते है। फलदार वृक्ष वायु गति को कम करके, अपने आच्छदन के नीचे तापमान को कम करके वाष्पोत्सर्जन व वाष्पीकरण द्वारा होने वाले जल हास को कम करने में सहायक है।

6. पोषण सुरक्षा – खाद्यान्न उत्पादन में सराहनीय वृद्धि के उपरान्त भी हमारे देश की जनसंख्या का अहम् हिस्सा जिसमें मुख्यत बच्चे व महिलाएं शामिल है कुपोषण का शिकार है। फल वृक्ष प्रोटीन, खनिज लवणों, विटामिन्स व पोषक तत्वों के मुख्य स्त्रोत है। इसके साथ–साथ भारतीय जनसंख्या के खान–पान प्रणाली में परिवर्तन हुआ है। प्रतिव्यक्ति खाधान उपभोग घट रहा है जबकि फल, सब्जी, मांस, मछली, अण्डा तथा दुग्ध पथार्थों का उपभोग बढ रहा है। एक आंकलन के अनुसार वर्ष 2030 तक हमारे देश में भोजन द्वारा प्रदत ऊर्जा का 40 प्रतिशत हिस्सा खाधानों के अतिरिक्त खाद्यपदार्थों द्वारा पूर्ति किया जायेगा। इन सभी तथ्यों को दृष्टिगत रखते

है फल वृक्ष आधारित कृषि वानिकी प्रणाली पोषण सुरक्षा हेतु एक महत्वपूर्ण विकल्प है।

प्रारूप

संघटको के अनुसार फल वृक्ष आधारित कृषि वानिकी के विभिन्न प्रारूप निम्न है –

1. होर्टी एग्रिकल्चर (फल वृक्ष + शस्य फसले)
2. होर्टी पास्चर (फल वृक्ष + चारे घास)
3. होर्टी–एग्रि–पास्चर (फल वृक्ष + शस्य फसले + चारा)
4. होर्टी–सिल्वी–पास्चर (फल वृक्ष + वृक्ष + चारा)

इन प्रारूपों का उपयोग व इनके संघटको की प्रजातियों का चुनाव स्थान विशेष की कृषि–जलवायुवीय परिस्थितियों, कृषक परिवार के पास उपलब्ध संसाधनों एवम् आवश्यकताओं के अनुरूप करना चाहिए। फल वृक्ष आधारित कृषि वानिकी प्रारूपों के लिए संघटक प्रजातियो का चुनाव इन प्रारूपों की उत्पादकता एवम उपयोगिता को निर्धारित करने वाला मुख्य कारक है। पारीक व अवस्थी (2008) ने फलं वृक्षों तथा सहायक फसलों वांछित लक्षणों का वर्णन किया है। इनके अनुसार शुष्क क्षेत्रों में फलदार वृक्ष आधारित कृषि वानिकी प्रारूपों हेतु फल व सहायक फसलों में निम्न गुण होने चाहिए –

(अ) फलदार वृक्ष

1. मरूद्मिद वनस्पति अनुकूलन जैसे गहरा व विकसित मूल तंत्र, मोटी क्यूटिकल तथा मोम परत युक्त पर्णीय सतह, धंसे हुए पर्ण रध्र
2. वृक्ष अपनी अधिकाधिक वानस्पतिक व प्रजनन काल मृदा में अधिकतम नमी उपलब्धता के समय पर करें ।
3. फल वृक्षों का मूल तंत्र की संरचना, विन्यास व गहराई इस प्रकार की हो वह सहायक फसलों के साथ मृदा संसाधनों (जल व पोषक तत्वों) के लिए प्रतिस्पर्धा न करें।
4. वृक्षों से गिरने वाली पत्तियां सहायक फसल के लिए लाभदायक हो
5. वृक्ष अच्छी कोपिसिंग (Coppicing) व सेल्फ प्रनुगी (Self-Pruning) क्षमता वाला हो
6. वृक्ष की केनोपी (Canopy) इस प्रकर की हो जिससे सहायक फसल को उपयुक्त प्रकाश मिल सके।
7. नाशिकीट व पादप व्याधि प्रतिरोधी

(ब) सहायक फसलें

1. इनकी ऊँचाई फल वृक्ष के बराबर न हो।

2. सहायक फसल का चुनाव फल वृक्ष के नीचे प्रकाश उपलब्धता तथा फसल की छाया प्रतिरोधक क्षमता के अनुसार करे।
3. इनका आर्थिक जीवन काल फल वृक्ष की तुलना में कम हो
4. ऐसी पादप व्याधियां ज़ो कि फल वृक्षों तथा सहायक फसल दोनों को प्रभावित करती है ऐसी स्थिति में सहायक फसल, फलदार वृक्षों की तुलना मे पादप व्याधि की कम सुग्राही हो।
5. सहायक फसलों के लिए आवश्यक कृषण व कटाई क्रियाए फलदार वृक्ष पर प्रतिकूल प्रभाव न डाले।
6. यह फसलें क्षेत्र विशेष की मृदा प्रकार, वर्षा, सिचाई तथा जलवायु के लिए उपयुक्त हो।
7. इस क्षेत्र की मृदा में नत्रजन की कमी है अतः सहायक फसलें नत्रजन–स्थिरीकरण करने वाली हो।
8. विपणन/प्रसंस्करण तथा श्रम सुविधाओं की उपलब्धता के अनुरूप उपयुक्त फसल हो।

फलदार वृक्ष आधारित कृषि वानिकी उत्पादन प्रणाली हेतु उपयुक्त फलदार व सहायक फसल का चुनाव करने के पश्चात उपयुक्त प्रबन्धन क्रियाओं को अपनाना आवश्यक है। यहां पर यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि इस समन्वित उत्पादन प्रणाली की प्रबन्धन क्रियाएं इनके संघटकों की एकल उत्पादन प्रणाली से भिन्न होती है। अतः क्षेत्र प्रजाति संघठन के अनुसार उपयुक्त भू–परिषिकरण, जल, नाशिकीट, खरपतवार, पादप व्याधि, कटाई छंटाई, पोषक तत्व प्रबनधन तकनीकों को अपनाएं।

शुष्क क्षेत्रों के लिए कुछ उपयुक्त फल वृक्ष आधारित कृषि वानिकी प्रारूप

1. **होर्टी–एग्रिकल्चर** – इस पद्धति में फल वृक्षों व शस्य फसलों को सहउत्पादन किया जाता है। खेजड़ी बोर्डी, लसोड़ा, कैर के साथ मोठ, ग्वार, बाजरा, मूंग तथा चना सहउतपादन राजस्थान के गर्म शुष्क प्रदेशों की एक परम्परागत होर्टी एग्रिकल्चर पद्धति है। जिजिफस रोटेन्डिफोलिया + मूंग/मोठ/ग्वार तथा जिजिफस माऊरीशियाना + मूंग/ग्वार गर्म शुष्क प्रदेशों के लिए आर्थिक व पर्यावरणीय दृष्टिकोण से उपयुक्त होर्टी–एग्रिकल्चर पद्धति है। फरोदा (1998) द्वारा किए गए परिक्षण यह दर्शाते हैं बेर+मूंग पद्धति मे कम वर्षा वाले वर्षों में मूंग की उपज, एकल मूंग उत्पादन की अपेक्षाकृत जयादा हुई। इस पद्धति को अपनाने से फसल व फलोत्पादन के साथ–साथ एक चार सदस्यी परिवार के लिए आवश्यक जलाऊ लकड़ी तथा चार भेड़/बकरी के लिए आवश्यक चारे की वर्ष भर की मांग को पूर्ण किया जा सकता है। मूंग व

बेर के सहउत्पादन से प्रति हेक्टर 2886 रूपये ज्यादा मुनाफा अर्जित किया जा सकता है (गुप्ता एवम् अन्य, 2000)। अतः बेर आधारित होर्टी–एग्रिकल्चर इस क्षेत्र हेतु अधिक उत्पादक, मुनाफा देने वाला, कम जोखिम वाला कृषि उत्पादन पद्धति है।

आंवला शुष्क एवम् अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों के लिए उपयुक्त फलदार वृक्ष है । आंवला आधाारित होर्टी–एग्रिकल्चर पद्धति का अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में विस्तृत अनुसंधान किये गये हैं। इन अनुसंधानों के अनुसार दलहनी फसलों व आंवला का सहउत्पादन आर्थिक व पर्यावरर्णीय दृष्टिकोण से उतम है। आंवला आधारित मल्टीस्टोरी फसल प्रणाली विषय पर केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर में किए गए अनुसंधानो के प्रारम्भिक परिणामों के अनुसार मोठ, चना, मेथी इत्यादि फसलो को आंवले के साथ आसानी से उगाया जा सकता है। इसी प्रकार शुष्क प्रदेश के सिंचित क्षेत्रों मे किन्नो, नींबू, अनार के साथ विभिन्न शस्य फसलें जैसे कपास, मूगफली, चना, सरसों, गेहूं का सहउत्पादन संभव है।

2. होर्टी पास्चर

इस पद्धति में फलदार वृक्षों के साथ चारे वाली वनस्पतियों (घासों) का उत्पादन किया जाता है। यह पद्धति मुख्यतः असिचिंत क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है तथा इससे फलों के साथ–साथ चारा व लकड़ी का उत्पादन होत है। असिंचित क्षेत्रों में फलदार वृक्षों एवम् घासों का चुनाव मुख्यतः वर्षा की मात्रा के अनुसार किया जाता है। तालिका 1 में वार्षिक वर्षा के अनुसार होर्टी पास्चर पद्धति के लिए उपयुक्त घास व फलदार वृक्षों को सूचिबद्ध किया गया है।

राजस्थान के शुष्क क्षेत्र में किए गए एक अनुसंधान के अनुसार सेचरस सिलिएरिस–जिजिफस माऊरीशियाना होर्टी–पास्चर पद्धति के द्वारा प्रति हैक्टर 1.2 टन चारा प्राप्त किया जा सकता है तथा फलोत्पादन पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता (शर्मा एवम् दिवाकर 1989) शर्मा एवम् वशिष्ठ (1985) के एक आंकलन के अनुसार जिजिफस रोडेटिफोलिया के 280 पौधे प्रति हैक्टर को सेंचरस सिलिएरिस के साथ रखा जा सकता है। काजरी के विभिन्न आंकलनो के अनुसार गर्म शुष्क क्षेत्रों में एकल शस्य फसलोत्पादन की तुलना में होटी पास्चेर पद्धति ज्यादा लाभ प्रदान करने वाली है (गजा एवम् अन्य 1999, 2004)

*****

फलदार पौधों की प्रवर्धन तकनीकें

हनीफ खान

केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर

फल वाले पेड़–पौधे सामान्यतया बहुवर्षीय होते हैं। इनमें फलन रोपण के कुछ वर्ष बाद शुरू होता है। फल वृक्षों के उद्यान बहुत प्राचीन काल से स्थापित होते रहे हैं। भारत की भिन्न–भिन्न प्रकार की ज़लवायु में बहुत सी फल प्रजातियाँ व्यापक स्तर पर बागवानी में प्रयोग हो रही है। सफल बागवानी हेतु उन्नत किस्मों के पौधे उधान में लगाने चाहिए। उन्नत किस्मों के अधिक पौधे तैयार करने की जानकारी तथा प्रशिक्षण प्राप्त करके स्वयं की नर्सरी के व्यवसाय द्वारा अच्छी आय अर्जित की जा सकती है। फलदार पौधों के अधिक संख्या में उन्नत किस्म के पौधे तैयार करने की प्रक्रिया बीज उत्पादन से भिन्न है। इसमें दक्षता प्राप्त करने के लिये अभ्यास व अनुभव प्राप्त करना होता है। पौधों को प्रवर्धित करने की प्रक्रिया में प्रजनन कला, ऑख लगाना, कलम लगाना, शाखा लगाना व अन्य क्रियाओं का प्रयोग किया जाता है। कुछ फल वृक्षों के पौधे बीज द्वारा भी तैयार किये जाते हैं जैसे नींबू, फालसा, शहतूत, लसोड़ा पपीता इत्यादि।

अन्य फल वृक्षों में बीज द्वारा प्रवर्धन से वांछित पौधे नहीं प्राप्त होते हैं। इनमे बीज से उत्पन्न पौधे मातृ वृक्ष से भिन्न हो सकते हैं सामान्यतया निम्नतर गुणवत्ता के होते हैं। बीज द्वारा प्रवर्धित पौधों में फलन कायिक प्रवर्धन की तुलना में देर से होता है। बीज द्वारा प्रवर्धित पौधों की लम्बाई भी अधिक होती है। जिन पर फल तुड़ाई में परेशानी होती है। बीज परिपक्व अथवा अपरिपक्व दोनों प्रकार के हो सकते हैं। परिवक्व बीज अंकुरित होकर नये पौधों का जन्म देते हैं, परन्तु कुछ पौधों में अपरिवक्व बीजों का निर्माण होता है, इनमें सामान्यतया भ्रुण नहीं होता या अविकसित होता है। परिपक्व बीज सामान्यतया कठोर तथा मोटा होता है जबकि अपरिपक्व बीज पतला, कोमल तथा हल्का होता है।

फल वृक्ष के बीजों को प्लास्टिक की थैलियों अथवा छोटे आकार के गमलों में लगाया जा सकता है। इसके लिये एक पात्र में केवल एक ही बीज लगाकर अच्छा पौधा बनाया जा सकता है। कुछ फल प्रजातियों में बीज से प्राप्त पौधे केवल मूलवृन्त हेतु उपयोग लाये जाते हैं उदाहरणार्थ बेर (बोरड़ी मूल वृन्त), आँवला, किन्नु (जट्टी खट्टी–मूल वृन्त), सेव, आम,

अमरूद इत्यादि।

फलदार वृक्षों का प्रर्वधन अधिकांशतः कायिक प्रवर्धन (अलैंगिक जनन) द्वारा करके ही अच्छी किस्मों के अधिक संख्या में पौधे तैयार किये जाते हैं। कायिक प्रवर्धन विधियों का विवरण इस प्रकार है।

1. कटिंग द्वारा
2. जडों को अलग करके तथा उनके जडवों द्वारा
3. लेयरिंग व गुट्टी द्वारा
4. कलिकायन (बड़िंग द्वारा)
5. ग्राफ्टिंग (कलम) द्वारा
6. उत्तक संवर्धन (टिश्यू कल्चर) द्वारा

1. कटिंग विधि द्वारा

फलदार पौधों के प्रवर्धन की सबसे सरल एवं लोकप्रिय विधि कटिंग विधि है जिसमें उन्नत किस्म के पेड की जड़ अथवा तने की कटिंग ली जाती है। सामान्यतः तने का उपरी हिस्सा जहाँ बहुत सारी टहनियाँ निकलती है, उस भाग से सख्त टहनियॉ इस कार्य के लिये उपयुक्त होती है। वर्षा ऋतु अथवा फूल समाप्त होने के पश्चात जब पौधा नई बढत प्राप्त करता है उस समय छोटी कैंची से मूल पौधे से कटिंग लेनी चाहिये। कटिंग कम से कम 3--4 गाँठ वाली हो तथा एक कटिग 6 से 12 इंच लम्बी हो सकती है। कटिंग को तुरन्त जमीन तैयार गड्ढों में या गमलों अथवा पॉलीथीन की थैलियों में लगाया जाता है। इसके लिये मिट्टी के मिश्रण में बालु व पत्तियों की सड़ी हुई खाद काम में ली जाये तो अच्छे परिणाम देती है। कटिंग लगाने के 15--20 दिन बाद नई पत्तियाँ निकलना शुरू हो जाती है। इस विधि द्वारा बेलपत्र, नीम्बु, अंगूर, अनार, आँवला, जामुन, अंजीर, शहतूत इत्यादि के पौधे व्यापक स्तर पर तैयार किये जा सकते हैं। खजूर के पौधे मातृ वृक्ष की जड़ों के पास निकले सकर्स को अलग करके तैयार किये जाते हैं।

2. जड़ों की कटिंग तथा जड़वो द्वारा

इस विधि में पौधों की जड़ों को अलग करके उपयुक्त माध्यम के साथ लगाया जाये तो प्रत्येक पौधे से सेंकड़ों पौधे अल्प अवधि मे तैयार किये जा सकते हैं। जड़ों के अलावा तने के कुछ परिवर्तित रूप जो सामान्यतया बल्ब (शलकन्द), राईजोम, कॉर्म तथा ट्यूबर (कंद) के

नाम से जाने जाते हैं, को लगाकर भी आसानी से नये पौधे बनाये जा सकते हैं।

3. लेयरिंग (गुट्टी) विधि द्वारा

सभी फल वृक्षों में कटिंग से नये पौधे नहीं बनते है। इन फल वृक्षों के लिये लेयरिंग अथवा गुट्टी विधि महत्वपूर्ण है जिससे नये पौधे जल्दी तैयार किये जा सकते हैं। इस विधि में मूल पौधे पर भी जड़ प्राप्त की जाती है तथा जब जड़ निकल आती है तब तने की उस शाखा को काटकर नया पौधा तैयार कर लिया जाता है।

लेयरिंग सामान्यत: दो प्रकार की होती है – (1) जमीन के अन्दर (2) जमीन के बाहर पौधे के उपरी हिस्से में।

1. जमीन के अन्दर : इस लेयरिंग विधि मे परिपक्व पौधे की टहनियॉ जो मिट्टी के पास वाले स्थान पर निकलती है उन्हे जमीन में दबाकर इनकी गांठ वाले स्थान पर छोटा सा कट लगाने के पश्चात मिट्टी डालकर दबा देते हैं और मिट्टी को गीला रखते हैं। पौधे की बढ़त के साथ दबाई गई टहनी भी बढेगी तथा साथ ही कटे स्थान से जड भी निकलेगी। दो तीन माह के उपरान्त दबाये गये पौधे की टहनी के हिस्से को मूल पौधे से अलग करने पर नई जड़ें दिखाई देती है। इनको गमले या जमीन पर लगाकर नया पौधा आसानी से तैयार किया जा सकता हे।

2. जमीन के बाहर पौधे के उपरी हिस्से की टहनी में गॉठ (नोड) के पास कट लगाकर उस स्थान पर रूट हार्मोन्स तथा मोस लगाकर उस स्थान को प्लास्टिक कवर से बांध दिया जाये तो कुछ समय पश्चात इस हिस्से से जड़ निकलना शुरू हो जाती है। इस विधि को बागवानी में गुट्टी से भी जाना जाता है। पौधे को अगर नमी प्रदान की जायेगी तो जड़े भी जल्दी निकलेगी, लेयरिंग विधि द्वारा अंगूर, लिची, निंबू इत्यादि फलदार पौधे अधिक संख्या में तैयार किये जा सकते हैं।

4. कलिकायन (बडिंग) विधि द्वारा

अच्छी किस्मों के उन्नत पौधे प्राप्त करने के लिये बडिंग बहुत ही लोकप्रिय विधि है। इस विधि में उन्नत किस्म पौधे की कलिका अथवा आँख (बड) को दूसरे पौधे की छाल में चीरा लगाकर स्थापित कर नया पौधा उन्नत किस्म का बन जाता है। बेर की देशी किस्म (बोरड़ी) के पौधे पर उन्नत किस्म के पौधे की छाल से आँख (बड) काटकर लगा दी जाये तो इसके फूटने से निकलने वाली शाखा से पौधा उन्नत किस्म को होगा।

कलिकायन विधि में जिस पौधे पर आँख लगाना है उसे मूलवृन्त कहते हैं। मूलवृन्त की

कटिंग करके उस स्थान या टहनी का चयन करना चाहिये जिस पर उन्नत किस्म की बड़ लगानी हो। उस स्थान पर लगी हुई पत्तियों तथा कॉटो का हटाकर साफ कर देना चाहिये साथ ही बडिंग के लिये बडिंग नाइफ (चाकु) काम में लेना चाहिये। उन्नत किस्म की आँख प्राप्त करने के लिये पहले उसका चयन कर 4 से 6 इंच लम्बी टहनी के साथ काटकर पानी में रखना चाहिये तथा बडिंग चाकू से आँख निकाल कर मूलवृन्त (देशी पौधा जिस पर आँख लगानी हो) में लम्बा चीरा लगाकर आँख को उसमें लगाना चाहिये। ऑख को लगाने के उपरान्त उस जगह को प्लास्टिक की पट्टी से अच्छी तरह बांध दिया जाता है ताकि कटा स्थान हवा लगने से सूख न जाये। बडिंग के 15–20 दिन बाद आँख वाले हिस्से में फूटकर नई टहनी निकलती है। इस पर नये उन्नत किस्म के फैल लगते हैं। बडिंग वाले हिस्से के अलावा अन्य हिस्से की शाखाओं को नहीं बढ़ने देना चाहिये। इस विधि द्वारा बेर, आँवला, नींबु, अमरूद, गुलाब, खेजड़ी, मोसमी इत्यादि पौधों की उन्नत किस्मों का प्रवर्धित किया जाता है।

5. कलम (ग्राफ्टिंग) विधि द्वारा

पौधों की उन्नत किस्म के प्रवर्धन के लिये कलम लगाना सरल व महत्वपूर्ण विधि है। इस विधि में देशी पौधे पर उन्नत किस्म के पौधे की टहनी को ग्राफ्ट किया जाता है। यह विधि सामान्यत छोटी अवस्था के मूल वृन्त पौधे जिनकी लम्बाई 1–2 फीट हो और टहनी पेन्सिल की मोटाई की हो पर ग्राफ्टिंग करने से अच्छे परिणाम मिलते हैं। ग्राफ्टिंग सामान्यतः पौधे की तीव्र बढोतरी की ऋतु में की जाती है। इसके लिये वर्षा ऋतु या बसन्त ऋतु का समय अनुकूल होता है। विभिन्न प्रकार के फल वाले पौधे जिनमें आम, अमरूद, आँवला, अनार, निम्बु, किन्नु, संतरा, अंगूर, चीकू, कटहल तथा जामून शामिल है में इस विधि द्वारा उन्नत किस्म के पौधे तेयार किये जाते हैं।

6. उत्तक संवर्धन (टिश्यू कल्चर) विधि द्वारा

उत्तक संवर्धन तकनीक में उन्नत किस्म के पौधे से हजारों–लाखों की संख्या में उसी किस्म के पौधे जो रोग मुक्त हो तैयार किये जा सकते हैं। इसमें पौधे का बहुत छोटा हिस्सा जो पत्ति, जड़ का शिरा या तने का शिरा हो सकता है को कृत्रिम पौषण माध्यम प्रयोगशाला में प्रदान कर बढवार शुरू की जाती है। पौधे परखनली बीकर या जारो में बढना शुरू कर देते है जिनको विच्छेदित कर अधिक संख्या में छोटे–छोटे पौधे बन जाते हैं जिनमें जड़, तना, पत्ति का विकास शुरू हो जाता है। इसकी कुछ बढवार के पश्चात इन्हे कठोर करने के लिये प्रयोगशाला से बाहर रखा जाता है। उत्तक संवर्धन से फलों की कई प्रजातियों में जैसे कैला, पपीता, खजूर, अनार, संतरा इत्यादि में अधिक संख्या में स्वस्थ पौधे प्राप्त करना सम्भव हो सका है।

*****

फलोत्पादन हेतु मृदा प्रबन्धन : महत्व एवं तकनीकें

एम.एल.सोनी, एन.डी. यादव एवं सीमा भारद्वाज
के.शु.क्षे.अ.सं., प्रादेशिक अनुसंधान स्थात्र, बीकानेर (राज.),

कृषि उत्पादन हेतु विभिन्न अवयवों में जिस प्राकृतिक संसाधन का सर्वप्रथम नाम आता है, वह है मृदा। किसी भी क्षेत्र विशेष की मृदा का गुण व धर्म उस क्षेत्र के विकास में अति महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। मृदा कृषि उत्पादन का मुख्य आधार है। पौधे अपनी समुचित वृद्धि के लिए मृदा से ही जल व आवश्यक पोषक तत्व प्राप्त करते हैं। इसके अकुशल प्रबन्धन व अत्यधिक दोहन से मृदा का उपजाऊपन घट रहा है तथा आवश्यक पोषक तत्वों की कमी हो रही है। मृदा में किसी भी एक पोषक तत्व की कमी अन्य पोषक तत्वों को भी प्रभावित करती है अतः इन पोषक तत्वों की उपलब्धता बनाये रखने हेतु मृदा का वैज्ञानिक प्रबन्धन अति आवश्यक है। इसमें जिन महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर गहन रूप से ध्यान देना है वो निम्नलिखित हैं :

1. मृदा जांच
2. वायु द्वारा मृदा अपरदन व रोकथाम
3. पोषक तत्व प्रबन्धन
4. मृदा नमी संसरक्षण/प्रबन्धन
5. मृदा लवणता/क्षारीयता

1. मृदा जांच :

किसी भी फसल के लिए मृदा में व्याप्त जैविक कार्बन, मुख्य पोषक तत्वों जैसे नत्रजन, फास्फोरस, पोटास आदि के साथ-साथ गौण पोषक तत्वों व सूक्ष्म पोषक तत्वों का परीक्षण किया जाता है। जहां तक खाद्यान्न फसलों हेतु मृदा जांच का सवाल है, इन फसलों हेतु ऊपरी 15 से.मी. मृदा को मानक आधार माना जाता है, परन्तु बागवानी फसलों हेतु सर्वप्रथम यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि उस मृदा की गहराई पर्याप्त है, क्योंकि कम गहराई वाली मृदा में फलदार वृत्तों की जड़ें पूर्ण रूप से फैल नहीं पाती, जिसका सीधा प्रभाव उधानीकी फसलों की बढ़वार व फलोत्पादन पर पडता है। फलदार वृक्षों हेतु 2.0 से 2.5 मीटर तक मृदा गहराई अति आवश्यक है। जिन क्षेत्रों में 2 मीटर गहराई तक कैल्शीयम कार्बोनेट के कंकड, पत्थर पाये जाते हैं, उनमें मृदा संस्तर में बदलाव अति आवश्यक है।

2. वायु द्वारा मृदा अपरदन व प्रबन्धन

शुष्क क्षेत्रो में वायु द्वारा मृदा अपरदन एक गम्भीर समस्या है, जिसका मुख्य कारण यहां की मृदा संरचना, वायु वेग, मृदा में नमी की कमी आदि प्रमुख है। जिन क्षेत्रों में नवीन बाग स्थापित करना है, वहां बाग लगाने से पूर्व यह सुनिश्चित कर लिया जाना चाहिए कि उस क्षेत्र में मृदा अपरदन रोकने हेतु समुचित प्रबन्धन कर लिया गया है। इसके अभाव में बागवानी विकास प्रतिशतता घट जाती है, क्योंकि गर्मी के मौसम में आस-पास के क्षेत्रों द्वारा उडी हुई मिट्टी से नये लगाये गये पौधे पूर्ण रूप से ढक जाते हैं। जिस क्षेत्र में उद्यान लगाना है, उसके चारों ओर खासकर दक्षिण-पश्चिमी भाग में वायु दिशा के लम्बवत् मध्यम ऊंचाई के वायु अवरोधक/सेल्टर बेल्ट लगा दिये जाते हैं। जब वायु इन वायु अवरोधकों से टकराकर आगे निकलती है तो इसकी गति में कमी आ जाती है तथा मृदा ह्रास कम होता है। साथ ही ये वायु अवरोधक मिट्टी को भी जकड़े रखते हैं, जिससे उस क्षेत्र से मृदा ह्रास नही होता तथा नये लगाये गये पौधों का मिट्टी के जमाव से भी बचाव हो जाता है।

3. पोषक तत्व प्रबन्धन

एक स्वस्थ पौधे के विकास एवं वृद्धि के लिये सामान्यतया 16 पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। अतः पोषक तत्वों के समुचित प्रबन्धन हेतु भूमि का परीक्षण करके उसमें आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति करना बेहद जरूरी है। इसके लिए एक ऐसे विकल्प की जरूरत है, जो सभी किसानों द्वारा प्रयोग किया जा सके तथा साथ ही पौधे के लिए आवश्यक सभी पोषक तत्वों की पूर्ति की जा सके। बागवानी विकास हेतु पौधों की दूरी के अनुसार 3X3X3 फीट के गड्ढे खोदकर उन्हें मिट्टी तथा खाद (गोबर की खाद, वर्मीकम्पोस्ट अथवा कम्पोट) के मिश्रण द्वारा भर दिया जाता है, ताकि पौधे में जड़ों की बढ़वार के साथ-साथ उन्हें पोषक तत्व मिलते रहें। इस कार्बनिक खादों द्वारा मृदा संरचना में सुधार होता है तथा जल धारण क्षमता बढ़ती है। साथ ही फलों की गुणवत्ता व उपज में वृद्धि होती है। गोबर की आद या कम्पोस्ट बनाते समय यह ध्यान रखें कि इनमें व्याप्त विभिन्न पोषक तत्वों का ह्रास न हो। वैज्ञानिक विधि अपनाकर ही अच्छी खाद या कम्पोस्ट तैयार की जा सकती है। गोबर की खाद बनाने हेतु गड्ढा या ट्रेच विधि का उपयोग करते हैं। ध्यान रहे कि गड्ढे की गहराई 1.25 मीटर से ज्यादा न हो, क्योंकि विघटन करने वाले जीवाणुओं को अधिक गहराई पर आक्सीजन नहीं मिल पाती। गड्ढे की लम्बाई व चौडाई 3X4 मीटर रखनी चाहिए। गड्ढे की दवर व फर्श पक्का हो तो अच्छा रहता है, क्योंकि इससे पोषक तत्व रिसकर नीचे नहीं जाते। खाद की गुणवत्ता बढ़ाने हेतु 20

कि.ग्रा. फास्फोरस मिला दिया जाता है। भराई के पश्चात् गड्ढे के ऊपर से मिट्टी का लेप लगाकर छोड़ देते हैं। लगभग 1 माह बाद खाद को पलट देते हैं। इस तरह 3-4 महीने में खाद तैयार हो जाती है।

कम्पोस्ट खाद बनाने हेतु मुख्य रूप से नाडेप कम्पोस्ट, फास्फोकम्पोस्ट व वर्मीकम्पोस्ट विधियां अपनाई जाती हैं। इसके लिए सूखे तथा हरे वानस्पतिक पदार्थ मुख्य रूप से उपयोग में लिए जाते हैं।

नीबूं, माल्टा, मौसमी में गोबर की खाद, सुपरफास्फेट व म्यूरेट आफ पोटाश की पूरी मात्रा दिसम्बर माह में डाल दें। यूरिया की आधी मात्रा अप्रैल तथा आधी जून में डालें। गौण व सूक्ष्म पोषक तत्वों हेतु 500 ग्राम मैगनीज सल्फेट, 100 ग्राम बोरिक एसिड, 200 ग्राम फैरस सल्फेट के अलग-अलग घोल बनाएं। घोल बनाने हेतु 900 ग्राम बिना बुझा हुआ चूना, 100 लीटर पानी में डालकर निथरा हुआ पानी लेकर घोल बनाएं। सूक्ष्म पोषक तत्वों का पर्णिय छिडकाव फरवरी व जुलाई माह में करें। बेर की फसल हेतु गोबर की खाद, सुपर फास्फेट व म्यूरेट आफ पोटाश की पूरी मात्रा जून-जुलाई व यूरिया की आधी मात्रा जून-जुलाई व आधी मात्रा अक्टूबर-नवम्बर में देवें। इसी प्रकार आंवले में गोबर की खाद, म्यूरेट आफ पोटाश व सुपर फास्फेट मार्च-अप्रैल माह में देना चाहिए। यूरिया की आधी मात्रा मार्च-अप्रैल व आधी मात्रा अगस्त में देवें।

मृदा नमी संरक्षण/प्रबन्धन

शुष्क रेतीले क्षेत्रों में जल का वाष्पीकरण बहुत अधिक होता है अतः नमी संरक्षण हेतु विभिन्न प्रकार की प्लवारों का प्रयोग किया जाता है, जिसमें प्लास्टिक पलवार अहम् है। पलवार मृदा के तापमान को अनुकूल बनाए रखती हैं, बिमारियों को नियन्त्रित करती है तथा सिंचाई के अन्तराल को कम करती है। दीर्घकालीन फसलों हेतु 100 या 200 माइक्रॉन मोटी प्लास्टिक पलवार उपयुक्त रहती है। प्लास्टिक पलवार की मात्रा फसल के प्रकार व अवस्था पर निर्भर करती है। उद्यानिकी फसलों के लिए लगभग 40 प्रतिशत क्षेत्र पलवार हेतु उपयोग में लिया जाता है। प्लास्टिक पलवार के उपयोग से 25 से 35 प्रतिशत तक फसल उत्पादन में वृद्धि अर्जित की गई है।

मृदा लवणता/क्षारीयता

मृदा लवणता तथा क्षारीयता के मुख्य रूप से दो कारण है। पहला कारण है मृदा में प्राकृतिक रूप से व्यापक लवणों की मात्रा व दूसरा करण है लवणीय सिंचाई जल का प्रयोग। लवणीय/क्षारीय जल के प्रयोग से मृदा के भौतिक, रासायनिक व जैविक गुणों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। लवणीय जल में मुख्यतः कैल्शियम, मैग्नीशियम व सोडियम

के कार्बोनेट, बाइकार्बोनेट, सल्फेट व क्लोराइड पाये जाते हैं। ऐसे जल के उपयोग से मृदा में सफेद या भूरे रंग के धब्बे या चकते बनने लगते हैं तथा मृदा की उर्वरा शक्ति कम हो जाती है। खजूर को छोड़कर अन्य फलों में मृदा व जल लवणता का प्रतिकूल असर पड़ता है। सारणी संख्या 2 में फलों में लवणता सहनशीलता को दर्शाया गया है।

सारिणी -2 : लवण सहनशीलता के आधार पर फलों का वर्गीकरण

अति सहनशील	मध्यम सहनशील	कम सहनशील
खजूर	अनार	संतरा
चीकू	अंगूर	आड़ू
	अंजीर	नाशपती
	बेर	
	अमरूद	

मृदा लवणता की तरह ही मृदा क्षारीयता भी पौधों की वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। जिन मृदाओं में मृदा पी.एच. 8.5 से ज्यादा तथा विनिमय सोडियम प्रतिशतता 15 से ज्यादा हो, उन्हें क्षारीय मृदा की श्रेणी में रखा गया है। मृदा पी.एच. के आधार पर फलों की सहनशीलता का वर्गीकरण तालिका 3 में दशार्या गया है।

सारणी -3 : पी.एच. सहनसीलता के आधार पर फलों का वर्गीकरण

पी.एच.	फल वृक्ष
10.0	चीकू
9.10.0	खजूर, बेर, करौंदा, अमरूद, जामून, बेल
8.2 से 9.0	अनार, नाशपति, आड़ू, अंगूर

फलोत्पादन में जल प्रबंधन

एन.डी. यादव, एम.एल. सोनी एवं बीरबल
के.शु.क्षे.अ.सं., प्रादेशिक अनुसंधान स्थात्र, बीकानेर (राज.),

भारत वर्ष में आज भी 60 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या कृषि पर निर्भर है। भारत में उपलब्ध जल का अधिकतम भाग (90 प्रतिशत से अधिक) कृषि में प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार प्रमुख रूप से कृषि क्षेत्र ही उपलब्ध जल का अधिकाधिक प्रयोग कर रहा है। अतः जल की कमी सर्वप्रथम कृषि को प्रभावित करेगी। यदि आंकड़ों पर गौर किया जाय तो यह पाया गया है कि वर्ष 1951 से 1997 तक कुल सिंचित क्षेत्र में 4 गुना वृद्धि हुई है। इस प्रकार यह क्षेत्र 23 मिलियन हे. से बढ़कर 90 मिलियन हे. हो गया। इन्हीं वर्षों में यह देखा गया है कि पंजाब, हरियाणा तमिलनाडु एवं राजस्थान भीषण जल संकट के दौर से गजर रहे हैं जहाँ वर्ष 1951 में जल उपलब्धता 3450 घन मी. थी वह घटकर 1250 घन मी. रह गयी है। इसका मुख्य कारण जल समुचित उपयोग न करना तथा सिंचित क्षेत्र में विकास है। आज आवश्यकता है कि जल का समुचित उपयोग करके प्रति इकाई जल से अधिकतम उत्पादन प्राप्त करना है।

राजस्थान का पर्यावरण, जलवायु एवं मृदा संरचना मुख्यतः बारानी या वर्षा धारित खेती को पोषित करता है। किन्तु स्थानीय फसलों को उगाकर उनकी कम उत्पादकता एवं जोखिम अधिक होने के कारण प्रति व्यक्ति आय कम प्राप्त होती है जो आज सभी लोगों एवं किसानों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपर्याप्त है। वर्षा का कम होना एवं अकाल एवं सूखे के कारण एक वर्षीय फसलों का उत्पादन अत्यधिक प्रभावित होता है। बहुवर्षीय फसलों एवं पेड़ों को उगाकर किसान अच्छी आय प्राप्त कर सकते हैं।

राजस्थान में कुछ क्षेत्रों में भूमिगत जल की उचित उपलब्धता एवं इन्दिरागांधी नहर के आने के पश्चात सिंचित खेती की सम्भावनाएं काफी बढ़ी है। फलदार वृक्षों को लगाकर किसान अच्छी आय प्राप्त कर रहे हैं। किन्तु कृषि उत्पादन की आधुनिक तकनीकों की जानकारी न होने, न अपनाने से सिंचित कृषि के दुष्परिणाम देखने को भी मिल रहे है। अतः हल का समुचित उपयोग फसलों या फलदार वृक्षो (बागीचो) की सिंचाई हेतु उन्नत तरीके से करके ही प्रति इकाई जल से अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

फलदार वृक्षों में जल प्रबंधन की विधियां :–

फलोतपादन में जल आवश्यक क्यों है, इसकी जानकारी नितांत आवश्यक है। जैसा की

हम जानते है जल ही जीवन है। अर्थात जल की अनुपस्थिति में पेड--पौधे, जीव--जन्तु आदि का जीवन सम्भव नहीं है। इसका मुख्य कारण --

1. जल पौधों की सभी जैव--रसायनिक क्रियाओ में मुख्य भूमिका अदा करता है।
2. मृदा से पोषक तत्वों को अवशोषित करके पौधों के सभी भागो में पहुंचाता है।
3. वाष्पोत्सर्जन के द्वारा पौधों के तापमान को नियंत्रित करता है।
4. पौधों की पत्तियों, फूलों एवं फलो में ताजगी एवं Turgidity बनाए रखता है।

सिंचाई आवश्यकता की पहचान कैसे

फलदार वृक्षों में पानी कमी को निर्धारित करना आसान नहीं होता। फलदार वृक्षों की जड काफी गहरायी तक जाती है जिससे मृदा के नीचे की सतह से पानी अवशोषण करने सक्षम रहती है। कमी कभी पौधों में पानी की कमी तो रहती है लेकिन बाहर से पौधों की स्थिति के आधार पर पहचानना कठिन हो जाता है जिसका असर सीधे उत्पादन पर पड़ता है। जैसे कि फलों का आकार छोटा हो जाना या फलों का पीला पड़कर गिर जाना आदि है। इसकी पहचान के लिए पत्तियों की स्थिति का पता लगाते है। पत्तियों में यदि हरापन कम होने लगे, पत्तियां शाम के समय या सुबह भी मुर्झा रहे एवं किनारे से मुड़ने लगे और अंत में पत्तियां गिरने लगे तो समझ लेना चाहिए कि पौधों में पानी की कमी होने लगी है एवं सिंचाई अवश्य कर दें। लम्बी अवधि तक जल को कमी फूलों एवं फलों के गिरने का कारण बन जाती है। अतः समय पर सिंचाई अवश्यक करें।

जल की मात्रा कितनी

सिंचाई के समय जल की मात्रा का निर्धारण ही जल की उचित उपयोगिता को दर्शाता है। कम मात्रा में दिया गया जल फल वृक्षों की उत्पादकता पर विपरीत प्रभाव डालकर उत्पादन को कम कर देती है तथा अधिक मात्रा में जल का उपयेाग फल वृक्षों के लिए उपलब्ध उर्वरको पोषक तत्वों का हास कर अवांछनीय वृद्धि कर भी उत्पादन को कम कर देती है। अतः उचित समय पर उचित मात्रा में जल का उपयेाग जरूरी है। पानी की मात्रा एवं देने का समय पौधों की किस्म, आयु, बढ़वार मौसम एवं मृदा की किस्म पर निर्भर करता है। पानी की मात्रा का निर्धारण पानी दिए जाने की विधि पर निर्भर करता है। यदि सतही सिंचाई है तो फल वृक्ष के फैलाव के अनुसार थाला बनाकर पानी भर दिया जाता है। लेकिन इस तरह की किसी भी सिंचाई देने से पूर्व निम्न बात का ध्यान रखना चाहिए।

"सिंचाई देने से पूर्व यह सुनिश्चित कर ले कि पौधे नीचे 6 इंच की गहराई तक वृक्ष

पूर्णतया नमी रहित या सूख चुकी है।"

पानी की मात्रा के लिऐ निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिए।

1. फलदार पौधों की किस्म
2. वर्षा की स्थिति
3. बढ़वार की दर
4. पेड़ों का आकार
5. मृदा की किस्म
6. जड़ की अनुमानित गहराई / पौधों की आयु
7. सिंचाई की विधि

सिंचाई की विधियां

फलदार वृक्षों में सिंचाई की विधियों को दो भागों में बांट सकते हैं।

1. पौध सुस्थापना के समय
2. उत्पादन के समय

प्रथम स्थिति में पौधों को लगाते समय फलदार वृक्षों को जल की कम आवश्यकता पड़ती है बल्की इससे ज्यादा पौधों में पोषक तत्वों एवं मृदाजनित रोगो से बचाने की अधिक आवश्यकता रहती है प्रारम्भिक स्थिति मे इकोवैग, के साथ–साथ जीवित प्रतिशतता को बढ़ाया जा सकता है। द्वितीय स्थिति में थाला सिंचाई पद्धति, बूंद बूंद सिंचाई पद्धति, Sprinkler, माक्रोजेट फव्वारा विधि, बबलर आदि का प्रयोग पानी 40–70 प्रतिशत तक बचत की जा सकती है। कुछ प्रमुख विधियों का वर्णन निम्न प्रकार है।

1. थाला या बेसिन सिंचाई विधि

यह विधि सबसे आसान एवं बहुत पुरानी विधि है। इसमें पौधों के कैनापी (फैलाव) के आधार पर थाले या बेसिन बनाया जाता है एवं सभी थालो को पतली नाली के द्वारा एक दूसरे जोड़ दिया जाता है। इसको पानी से भर दिया जाता है। इसमें पानी की मात्रा अधिक लगती है एवं जल का नुकसान अधिक होता है।

2. बूंद–बूंद सिंचाई पद्धति

यह अत्याधुनिक सिंचाई पद्धति है इसमें 80 प्रतिशत पानी की बचत होती है एवं जल पौधों की जड़ों में सीधे पहुंचता है एवं वाष्पोसर्जन द्वारा जल का हास बहुत कम होता है। इसके लिए पतली पाइपों पर छोटे छोटे इमीटरर्स या ड्रिपर एक पतली टयूब के द्वारा लगाए जाते है

जिनकी साधारणतयाः जल निकास की क्षमता 4–8 ली. प्रति घंटा होती है। इन ड्रिपरर्स की पार्श्व पाइप को मुख्य पाइप लाइन से जोड़कर जल का प्रवाह 2.5 प्रेशर पर किया जाता है। इसके द्वारा पौधों मं उर्वरकों। पोषक तत्वों का भी प्रयोग किया जा सकता है। इसके प्रयोग के बाद समय समय पर ड्रिपर की सफाई अति आवश्यक है जिससे वांछित जल निकास बना रहे। पौधों की आयु बढ़ने के साथ साथ पानी की आवश्यकता बढ़ती रहती है ऐसी स्थिति में ड्रिपर की संख्या में वृद्धि कर या तंत्र को अधिक समय तक चलाना चाहिए।

3. बबलर

यह एक ऐसी पद्धति है जिसमें 110–250 ली./घंटे की जल निकास क्षमता वाले कम दाब वाले बबलर लगाए जाते हैं जिससे टयूब/पाइप द्वारा ड्रिपर या इमीटर्स लगाए जाते हैं। प्रति वृक्ष हेतु 3–4 ड्रिपर लगाए जा सकते हैं। इनको पेड़ की नीचे वेसिन में लगा दिया जाता है।

4. मिनी फव्वारा (माइक्रो जेट)

ये छोटे फव्वारे जो कम दबाव पर चलते हैं एवं जिसमें छोटे एवं बड़े क्षेत्र में पानी छिड़काव की क्षमता रखते है। बड़े वृक्षों की फैलाव के नीचे इन माइक्रो जेट (मिनी फव्वारा) को स्थापित कर दिया जाता है। इनकी पानी छिड़काव की क्षमता 3–6 मी. दूरी तक होती है। जो 2–20 मिमी. प्रति घण्टे वर्षा या छिड़काव कर सकते हैं। इसमें पानी के छानने की अति आवश्यकता होती है।

5. माइक्रोस्प्रिंकलर

ये फव्वारे कम दबाव पर कम दूरी तक छिड़काव करते हुए लगभग 300 ली. प्रति घंटा पानी छिड़काव की क्षमता रखते हैं। यह उन परिस्थितियों में प्रयोग किया जाता है जब फल वृक्षों के बीच फसलों का अंतः शस्यन लिया जा रहा हो। इससे फसल में सिंचाई साथ साथ फल वृक्षों मं भी सिंचाई हो जाती है तथा सम्पूर्ण पोधा वर्षा की तरह पानी प्राप्त करता है इससे पौधो की वृद्धि अच्छी होती है। किन्तु इस प्रकार सिंचाई मे फसलों के प्रकार उनकी जल आवश्यकता एवं फल वृक्षों के फूल एवं फल बनने की आवश्यकताओं को ध्यान में रखना अति आवश्यक होता है।

इस प्रकार उन्नत विधियों को अनाकर फलदार वृक्षों में सिंचाई करने अत्यधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

******

पादप पोषक तत्व प्रबंधन - घटक, महत्व एवं विधियाँ

सीमा भारद्वाज, वी.एस.राठौड़, एम.एल.सोनी, बीरबल एवं एन.एस.नाथावत

के.शु.क्षे.अ.सं., प्रादेशिक अनुसंधान स्थात्र, बीकानेर (राज.)

आधुनिक कृषि की ओर आने वाले समय में कृषकों का रूझाान रखने का प्रमुख कारण है कृषि में बदलते हुए दौर। वर्षो पूर्व जब मानव ने खेती की शुरूआत की होगी तो उसने प्रकृतिक संसाधनों की और ध्यान दिया होगा इस कारण इन संसाधनों का लम्बे समय तक टिकाऊपन बना रहा उसके बाद हरित क्रान्ति के आगाज से कृषकों ने कृत्रिम आदानों का अधिकाधिक उपयोग करना शुरू कर दिया। जिससे कुछ समय तक तो पैदावार अच्छी हुई परन्तु कुछ समय बाद ही इसके नकारात्मक प्रभाव आने लगे जिस कारण एक बार फिर कृषि का दौर प्राकृतिक संसाधनों के समावेश को बढावा देने लगा। आमतौर पर देखा गया है कि अच्छी पैदावार हेतु यह आवश्यक है कि पौधे को पोषण पर्याप्त रूप से मिले क्योंकि अनुसंधान द्वारा यह प्रमाणित हो चुका है कि समय के साथ–साथ फसल को मिलने वाले पोषक तत्व यदि पर्याप्त नहीं होते तो फसल पैदावार अच्छी नहीं होती साथ ही रासायनिक उर्वरक पर निर्भरता भी पौधे को संपूर्ण पोषण नहीं दे पाती जिससे पैदावार कम हो जाती है । इस हेतु यह आवश्यक है कि फसल में पोषक तत्व प्रबंधन किया जाये।

पोषक तत्व प्रबंधन

पौधों की वृद्धि हेतु पोषक तत्व मृदा द्वारा प्रदत् होते हैं किन्तु साथ ही पोषण संपूर्ण हो इस हेतु बाह्य स्त्रोतों जैसे रसायनिक उर्वरकों द्वारा भी ये तत्व प्रदान किये जाते हैं। केवल रसायनिक उर्वरकों के उपयोग से मृदा की उर्वरता, भौतिक व रसायनिक गुण प्रभावित होते हैं।

यह आवश्यक हो गया है कि रसायनिक उर्वरक के अलावा जैविक स्त्रोतों से मिलने वाले पोषक तत्वों को भी पादप पोषण में महत्व दिया जाए इसे ही पादप पोषक तत्व प्रबंधन कहा जाता है।

मृदा जांच/परीक्षण का पादप पोषण प्रबंधन में महत्व

पादप को पोषण मृदा से व बाह्य स्त्रोतों (जैविक व रसायनिक) से मिलता है। पौधे को कितना पोषण बाह्य स्त्रातों से मिलना चाहिए यह मृदा से प्राप्त पोषक तत्व पर निर्भर करता है व पौधे की पोषक तत्व आवश्यकता पर भी निर्भर करता है।

मृदा जांच द्वारा भूमि में पोषक तत्वों का स्तर ज्ञात कर यह जानना आसान हो जाता है कि बाह्य स्त्रोतों द्वारा किस प्रकार और कितना पोषक तत्व प्रदान किया जाना चाहिये। (चित्र – 1)

फलदार पौधों में पोषक तत्व प्रबंधन

फलदार पौधे लम्बे समय तक आय व उत्पादन देने वाले होते हैं अतः आवश्यक है कि शुरूआती वर्षो में पोषक तत्व आवश्यकतानुसार यथा समय दिए जाऐ व फसल अनुरूप दिए जाये।

शुष्क एवं अर्ध शुष्क क्षेत्र में आवश्यक पोषक तत्व किस तरह दिया जाना चाहिए इनका वर्णन किया गया है जो निम्न प्रकार से है।

चित्र–1 फलदार पौधों में पोषक तत्व प्रबंधन

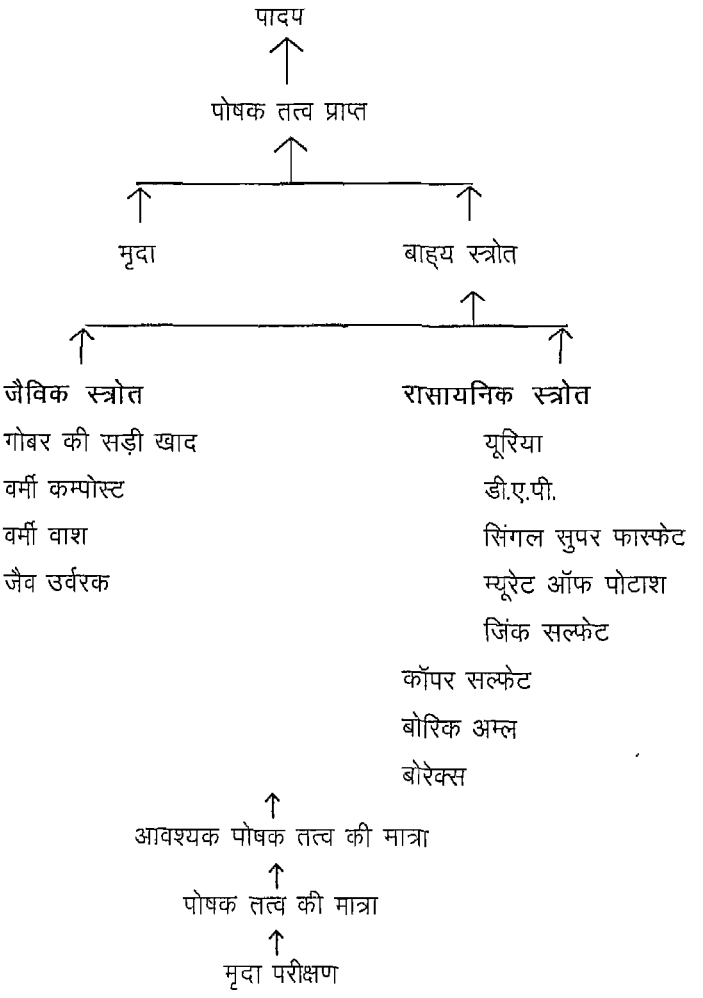

1. संतरा, किन्नौं, मौसमी, नींबू

खाद व उर्वरक	आवश्यक खाद एवं उर्वरको की मात्रा प्रति पौध (किग्रा मे)				
	1 वर्ष	2 वर्ष	3 वर्ष	4 वर्ष	5 वर्ष व अधिक
गोबर की खाद	15	30	45	60	75
सुपर फास्फेट	0.25	0.50	0.75	1.00	1 00
एम.ओ.पी	—	—	0.200	0.200	0.400
यूरिया	0.125	0.250	0.375	0.500	0.629

– नींबू के लिए गोबर की खाद 10 किग्रा. प्रति पेड़ के हिसाब से प्रथम वर्ष से देना शुरू करके प्रतिवर्ष 10 किग्रा बढाते हुऐ पांचवे वर्ष तक 50 किग्रा प्रति पेड़ देना चाहिए।

– समय गोबर की खाद, सुपरफास्फेट, क्यूरेट आफ पोटाश दिसम्बर–जनवरी मे तथा यूरिया की 1/3 मात्रा फरवरी में फूल आने के बाद, 1/3 मात्रा अप्रेल में फल बनने के बाद व 1/3 मात्रा अगस्त माह में देवे।

2. बेर

खाद व उर्वरक	आवश्यक खाद एवं उर्वरकों की मात्रा प्रति पौध (किग्रा में)				
	1 वर्ष	2 वर्ष	3 वर्ष	4 वर्ष	5 वर्ष व अधिक
गोबर की खाद	10	20	30	40	50
सुपर फास्फेट	0.35	0.700	1.40	1.75	1.75
एम.ओ.पी.	0.08	0.169	0 20	0.25	0.25
यूरिया	0.22	0.44	0.10	1.20	1.20

समय : गोबर खाद, एम.ओ.पी. सुपरफास्फेट मई–जून में तथा यूरिया की आधी मात्रा जुलाई में तथा शेष आधी नवम्बर माह में देवे।

3. अनार

खाद व उर्वरक	आवश्यक खाद एवं उर्वरकों की मात्रा प्रति पौध (किग्रा में)				
	1 वर्ष	2 वर्ष	3 वर्ष	4 वर्ष	5 वर्ष व अधिक
गोबर की खाद	0–10	16–20	24–30	32–40	40–50
सुपर फास्फेट	0.25	0.50	0.75	1.00	1.25
एम.ओ.पी.	0.05	0.050	0.10	0.15	0.15
यूरिया	0.10	0.20	0.30	0.40	0.50

समय : वर्षा ऋतु की फसल हेतु गोबर की खाद सुपर फास्फेट, म्यूरेट आफ पोटाश व यूरिया की मात्रा दिसम्बर–जनवरी व आधी मार्च–अप्रैल में देवें। शरद ऋतु की फसल हेतु गोबर की खाद, सुपर फास्फेट, म्यूरेट आफ पोटाश व यूरिया की 1/2 मात्रा जून में तथा शेष आधी सितम्बर में देवें।

4. अमरूद

खाद व उर्वरक	आवश्यक खाद एव उर्वरकों की मात्रा प्रति पौध (किग्रा में)			
	1–3 वर्ष	4–6 वर्ष	7–10 वर्ष	10 वर्ष व अधिक
गोबर की खाद	10–20	25–40	40–50	50
सुपर फास्फेट	0 15–0.50	0 50–2 00	2.00	2.50
एम.ओ.पी	0.20–0.40	0.40–0.80	0.80–1 20	1.20
यूरिया	0.05–0.25	0.30–0.60	0.75–1.00	1.00

समय : वर्षा ऋतु की फसल हेतु गोबर की खाद, सुपर फास्फेट, क्यूरेट आफ पोटाश दिसम्बर में व 1/2 यूरिया दिसम्बर–जनवरी व शेष आधी यूरिया मार्च–अप्रेल में देवें। शरद ऋतु की फसल हेतु गोबर की खाद, सुपर फासफेट, ग्यूरेट आफ पोटाश जून में व आधी मात्रा सितम्बर माह में देवे।

5. आंवला

खाद व उर्वरक	आवश्यक खाद एवं उर्वरकों की मात्रा प्रति पौध (किग्रा में)				
	1 वर्ष	2 वर्ष	3 वर्ष	4 वर्ष	5 वर्ष व अधिक
गोबर की खाद	10	20	30	40	50
सुपर फास्फेट	0.35	0.70	1.05	1.40	1.75
एम.ओ.पी.	0.125	0.250	0.375	0.375	0.375
यूरिया	0.202	0.44	0.66	0.88	1.10

समय : जनवरी फरवरी में बेड के चारों तरफ नाली बनाकर खाद एवं उर्वरक देवें। एक लीटर पानी में 6 ग्राम बोरेक्स के घोल का छिड़काव फल गिरने से रोकता है।

6. बेल

बेल के संदर्भ में उर्वरक संबंधी अनुसंधान सीमित है। अन्य वृक्षों की तरह बेल के पेड़

को भी सभी तरह के पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। अतः एक वर्ष पुराने पौधे को 10 किलो गोबर की खाद, 125 ग्राम यूरिया, 250 ग्राम सुपर फास्फेट तथा 100 ग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश का मिश्रण प्रत्येक पेड़ में दे। पौधे की उम्र के साथ इसी अनुपात में इतनी ही मात्रा प्रत्येक वर्ष बढाते रहें तथा 8 वर्ष तक की उम्र तक बढाते रहे।

समय : उर्वरक का उपयोग मार्च–अप्रेल तथा गोबर की खाद का प्रयोग जुलाई में करे। खाद व उर्वरक का प्रयोग पौधे के फैलाव तक करें। इसके लिए एक वर्ष पुराने पौधे मे तने से 15 से. मी. तथा पूर्ण विकसित पेड़ में 45–60 से.मी. छोड़ कर थाले बना ले इन्ही में खाद व उर्वरक का प्रयोग करें और हल्की गुडाई करके अच्छी तरह मिलाकर तत्काल हल्की सिंचाई करें।

*****

फलों के मुख्य कीट एवं नियंत्रण

श्रवण एम. हलधर

केन्द्रिय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर

1. अनार की तितली

वैज्ञानिक नाम : डीओडोरिक्स (विरेकोला) आईसोक्रेटस

कुल : लाइकेनिडी

गण : लैपीडोप्टेरा

अनार की तितली के पौषक पौधे · यह व्यापक रूप से पूरे भारत में पाई जाती है, यह सभी प्रकार के फलों जैसे सेब, नीबू, अमरूद, लीची, शहतूत, आड़ू, नाशपाती, बेर, अनार, चीकू और इमली आदि में पाई जाती है, परन्तु यह अनार के फल को सबसे ज्यादा क्षतिग्रस्त करती है।

आर्थिक क्षति एवं नुकसान : अण्डे से निकला लार्वा फल में छेद करके अंदर घुस जाता है, क्षति के विशिष्ट लक्षण आक्रमक और प्रविष्टि छेद के बाहर लार्वे का गंध मलमूत्र फंस जाता है, बाद में फल सड़ांध पैदा करने लग जाता है और जीवाणु एवं कवक का हमला हो जाता है, प्रभावित फल अन्त में नीचे गिर जाते हैं और खाने लायक नहीं बचता है।

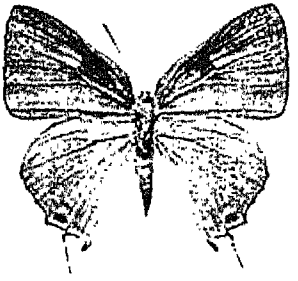

जीवन चक्र : अंडे चमकदार सफेद रंग और अंडाकार आकार के होते है अण्डे से लार्वा निकलने मे 7 से 10 दिन लगते है। लार्वे के लम्बाई 16 से 20 मिमी. होती है और इसका रंग भूरा और शरीर पर छोटे–छोटे बाल पाये जाते हैं। प्यूपा बनने से पहले लार्वा फल से बाहर आता है टहनी और फल पर रेशमी धागे के साथ प्यूपा लटक जाता है। प्यूपा की अवधि एक सप्ताह से एक महीने से अधिक लगता है यहां अपना जीवनचक्र 1 महीने से दो महीने में पूरा कर लेता

है, परन्तु जीवनचक्र मौसम पर निर्भर करता है यह एक वर्ष में 4 अतिव्यापी पीड़िया पूरी कर लेता है।

नियंत्रण :

- पौधे के फलों को दो–तीन दिन के अन्तराल पर दो परत पेपर या प्लास्टिक से बांधना चाहिए जिससे कि अनार की तितली अपने अण्डें फलों पर नहीं दे पाती है इस प्रबन्धन से 40–58 प्रतिशत तक फलों को नुक्सान होने से बचाया जा सकता है।
- कीडे लगे फल को निकालकर मिट्टी में गाड देना चाहिए।
- कम्पोजिटी कुल के खरपतवारों को खेत से निकाल देना चाहिए।
- ट्राईकोग्रामा पैरासिटोइड के अण्डों को अनार के खेत में छोड़ना चाहिए जिससे कि अनार की तितली के अण्डों को खत्म कर सके।

रासायनिक कीट नाशकों का प्रयोग :

रासायनिक कीटनाशी का नाम	रासायनिक कीटनाशी की मात्रा
डाइमीथोएट 30 ई सी	1.5 से 2.0 मिली/लीटर पानी
स्पाईनोसेड 45 एस सी	0.5 से 0.7 मिली/लीटर पानी
इंडोक्सिकर्ब 14.5 एस सी	0.5 से 0.7 मिली/लीटर पानी

2. बेर की फल मक्खी :

वैज्ञानिक नाम : कारपोमिया वेसुविअना

कुल : टैफरीटीडी

गण : डीप्टैरा

पौषक पौधे : यह फल मक्खी बैर का अकेला कीट है । इस कीट का आक्रमण भारत में शुष्क और अर्ध शुष्क क्षेत्र, ओरिएंटल एशिया, मध्य पूर्व, शीतोष्ण एशिया, चीन और दक्षिण यूरोप आदि क्षेत्रों में पाया जाता है, इस कीट से फलों का उत्पादन 13 से 80 प्रतिशत तक घट जाता है।

आर्थिक क्षति एवं नुकसान : इस फल मक्खी के व्यस्क के पंख भूरे रंग के होते हैं। इस कीट का मैगट ही क्षति पहुंचाते हैं। इस फल मक्खी का प्रकोप अक्टुबर से लेकर मार्च तक होता है। मादा फल मक्खी अपने अंडरोपक को कोमल फलों में धँसाकर गूदे में अण्डे देती है। ग्रसित फल के छेद से लसदार हल्के भुरे रंग का द्रव निकलता है। अण्डे से मैगट निकलते हैं जो के गूदे के खाकर उसमें स्पंज जैसे बहुत से छेद कर देते हैं और फल सड़ने लगता है।

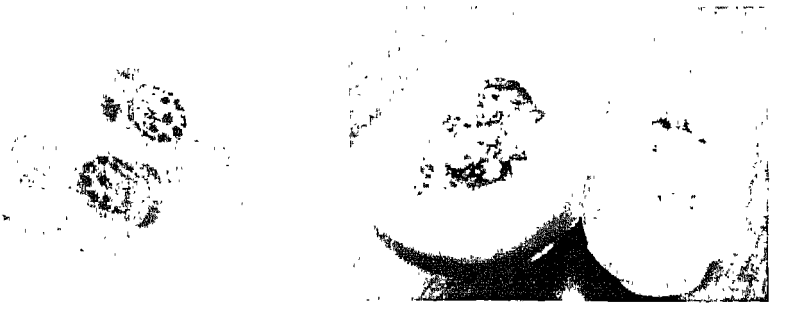

जीवन चक्र :

अण्डा : अण्डे मादा अपने नुकीले अण्डरोपक की सहायता से फलों के छिलकों के नीचे गूदे में देती है। ये अण्डे अलग–अलग या झूण्डों में दिये जाते हैं। अण्डा सींगार के आकार का चिकना, चमकदार एवं सफेद रंग का होता है। मादा अपने एक–दो माह के जीवनकाल में लगभग 22–25 अण्डे देती है। अण्डे से मैगट निकलने में 1 से 4 दिन लगते हैं।

मैगट : अण्डों के फटने के पश्चात् सफेद रंग के मैगट निकलते हैं जिन्हें गिडार भी बोलते हैं। मैगट का एक सिरा पतला और दूसरा चौड़ा होता है। इसके काटने तथा चबाने वाले मुखांग होते हैं, इसके टांगें नहीं होती है। ये उछलकर या रेंगगकर एक फल से दूसरे फल के पास जाता है। यह साधारण समय में 7 से 24 दिनों में प्यूपा में चला जाता है।

प्यूपा : प्यूपा अण्डा का, अगले सिरे पर कुछ चपटा, पतला और पीछे की ओर मोटा तथा नौंकादार होता है। इसमें प्यूपा से व्यस्क फल मक्खी निकलने में 5 से 41 दिन लगते हैं।

व्यस्क : व्यस्क फल मक्खी प्यूपा से बाहर निकलने के दूसरे दिन से ही मैथुन करना प्रारम्भ कर देती है। फल मक्खी के पंख पारदर्शक, जिन पर काजले रंग की धारियां होती है। व्यस्क फल मक्खी का मुखांग स्पंजाकार होता है। इस व्यस्क फल मक्क्खी का पूरे जीवन–चक्र में 4 से 55 दिन लगते हैं।

नियंत्रण :

बेर की फल मक्खी का प्रबधन स्थानीय क्षैत्र प्रबधन या व्यापक क्षैत्र प्रबधन का उपयोग करके किया जा सकता है यह प्रबधन निम्नलिखित है

1. **स्थानीय क्षैत्र प्रबधन** :

स्थानीय क्षैत्र प्रबधन का उपयोग फसल/क्षैत्र/ग्राम/ स्तर पर किया जाता है जहां पर फल

मक्खी का प्राकृतिक नियत्रण नही है, एक प्रतिबधित क्षैत्र मे फल मक्खी का की संख्या को न्युनतम स्थर पर रखने को स्थानीय क्षेत्र प्रबधन कहते है। इसका मुख्य उद्देश्य फल मक्खी का स्तर आर्थिक नुकसान के स्तर से नीचे रखने का है इस प्रबंधन के अन्दर निम्नलिखित प्रबंधान घटक आते है फल को पेपर या प्लास्टिक से बाँधना खेत की सफाई करना प्रोटीन बैट और क्यू आकर्षण–ट्रैप, कीट प्रतिरोधक पौधे जैविक नियत्रण और नरम कीटनाशको आदि का उपयोग फल मक्खी का स्थर आर्थिक नुकसान के स्तर नीचे रखने के लिये किया जा सकता है स्थानीय क्षेत्र प्रबंधन के अंदर निम्नलिखित प्रबधन घटक है।

(अ) **खेत की सफाई करना** – फल मक्खी के प्रबंधन मे सबसे प्रभावी तरीका खेत की सफाई करना होता है। फल मक्खी के प्रजनन चक्र और जनससंख्या वृद्धि को तोडने के लिये गर्मी के दिनो मे खेत की गहरी जुताई करनी चाहिए

(ब) **क्यू आकर्षण–ट्रेप** – क्यू आकर्षण ट्रेप फल पक्खी के प्रबधन मे खाद्य आकर्षण ट्रेप से ज्यादा प्रभावी है क्यू आकर्षण ट्रेप नर को आकर्षित करती है ओर इसके अंदर कीटनाशक रखा जाता है जिसके द्वारा नर मर जाता है और मादा को संम्भोग करने के लिये नर नही मिलता है इस प्रकार से फल मक्खी का प्रबधन कर सकते है

(स) **जैविक नियंत्रण** – बैर की फल मक्खी के लिये जैव नियत्रण का सफल प्रयोग कोई रिर्पाट नही हुआ है लेकिन कुछ जैव नियत्रण रिपोर्ट किये गये है वह निम्नलिखित है। ब्रेकोन फलेचैरी, ओपियस कारपोमिया, फोपियासकारपोमियाा आदि का प्रयोग करना चाहिए

(द) **कीट प्रतिरोधक पौधे** – कीट प्रतिरोधक पौधे समन्वित कीट प्रबंधन कार्यक्रम मे एक महत्वपुर्ण घटक है। यह किसी भी प्रतिकूल पर्यावरण प्रभाव से पैदा नही होता है और किसानो को कोई अतिरिक्त लागतं नही आती है अधिक उपज देने वाले पौधो और फल मक्खी प्रतिरोधी किस्मो को विकसित किया जा सकता है इसके लिये टीकडी, गोल, उमरान, सफेदा, ईलायची आदि बेर की किस्मे उगानी चाहिए।

(ई) **रासयनिक नियंत्रण** – बेर की फल मक्खी का रासयनिक नियत्रण हेतु मेलाथियान 50 ई.सी, स्पाईनेसेड 45 एस.सी. और एंडोसल्फान 35 ईसी जैसे कीटनाशको मक्खी के खिलाफ प्रभावी रहे है

2. व्यापक क्षैत्र प्रबधंन –

व्यापक क्षैत्र प्रबधन एक एकात्मक धारणा नही है लेकिन स्थानीय क्षेत्र प्रबधन सहित सभी अलग तरीको का प्रबधन भी इसमे शामिल है व्यापक क्षेत्र प्रबधन मे पुरूष बाँझ कीट जारी

करना कीट संगरोध और उपलब्ध स्थानीय क्षैत्र प्रबधन विकल्पो के साथ नियत्रण तकनीको का संयोजन शामिल होता है व्यापक क्षेत्र प्रबधन का मुख्य उद्धेश्य बहुत बडे क्षैत्र पर फल मक्खी का एक कीट उन्मूलन कार्यक्रम के विभिन्न प्रबधन के द्वारा नियत्रण किया जाता है। हाल ही मे एक व्यापक क्षेत्र प्रबधन का फल मक्खी उन्मुलन कार्यक्रम सेशेल्स देश के क्षेत्र मे किया गया जिसके मक्खी प्रबधन के तीन घटक थे (क) प्रारभिक बैट स्प्रे का इस्तेमाल करते फल मक्खी का नियत्रण, (ख) प्रजनन पैराफिरोमान आकर्षण ट्रैप का उपयोग करके नर का उन्मुलन और इसके द्वारा मादा के सम्भोग को रोकने का उन्मूलन कार्यक्रम और (ग) ट्रेप और फल निरीक्षण के द्वारा गहन सर्वेक्षण करके फल मक्खी को पुरी तरह खत्म करना। व्यापक क्षेत्र प्रबधंन मे प्रजनन पैराफिरोमान आकर्षण ट्रैप तकनीक फल मक्खी नियत्रण मे सबसे अच्छी सफल हुई कीट संगरोध आयात और निर्यात के द्वारा एक क्षैत्र या देश से अन्य गैर पीडित स्थानो से फल मक्खी का प्रसार प्रमुख माध्यम है फल मक्खी का नियत्रण आयात / निर्यात बंदरगाहों पर संगरोध करके और फलों के उपचार के माध्यम से अवरूद्ध कर सकते है।

3. छाल खाने वाले कीट

स्थानीय नाम– छाल बेधक इल्ली

वैज्ञानिक नाम– इन्डरबेला कुआड्रीनाटाटा

गण – लेपिडोटेरा

कुल – मेटरबेलिडी

पोषक पौधें – आम, ऑवला, अनार, अमरुद, नींबू, लीची,,लोकाट,चीकू तथा बेल आदि।

वितरण – यह कीट उतर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थन, हरियाणा, गुजरात, महाराष्ट्र तथा पंजाब आदि प्रान्तो में मिलता है।

क्षति प्रकृति - इसकी सूंडी अवस्था हानिकारक होता हैं। प्रारम्भ में यह छाल को खरोंच कर खाती है तथा बाद में तने, शाखाओं विशेषकर उनके जोड वाले स्थानों से छेद करके अन्दर प्रवेश कर जाती हैं। यह दिन के समय तने पर बनी हुई सुरंगों या बनी हुई जाल में छिपी रहती है तथा रात्री के समय सकिय रहती है। सूंडी रात्री के समय सुरंग अथवा छेद के पास छाल को खाती है तथा खाई हुई छाल के छोट–छोटे टुकडे, एवं विष्ठा तथा चिपेचिपे पदार्थ से लगभग 20–30 सेमी. लम्बी तथा 2–5 सेमी. चौड़ी भूरे रंग की रिबन की भाति जाली बनात है। यह इन जालों के अन्दर छिपकर तने की कोमल लकडी तथा खाध वाहिनियों को कुतर–कुतर कर

खाती है जिससे सुरंग बनती है। फलस्वरुप तनों के उपरी भागों में पोषक तत्वों का प्रवाह रुक जाता है, तने कमजोर हो जाते हैं,शाखायें सूख जाती हैं तथा ग्रसित वृक्षों में फल कम लगते हैं। कीट का अत्यधिक प्रकोप होने पर पूरा का पूरा पौधा ही सूख जाता हैं। इसका आकमण प्राय पुराने वृक्षों पर अधिक होता हैं। यह देखा गया है कि इसका प्रकोप काली मिट्टी तथा वर्षा वाले क्षेत्रों में अधिक होता है और 42–46 प्रतिशत तक पौधे ग्रसित पाये गये हैं।

जीवन इतिहास इसके जीवन चक्र में चार अवस्थायें अण्डा, सूंडी,, कृमिकोष तथा प्रौढ पायी जाती है।

अंडा – मादा काफी अधिक संख्या में 300–500 अंडे छोटे–छोटे समूहों में देती है। प्रत्येक समूह में लगभग 15–20 अण्डे होते हैं। अंडे देने का समय मई.जून का महीना होता है तथा अंडे लगभग 10 दिन में पक कर फूटते हैं। अंडे तना तथा शाखाओं की दरार में दिये जाते है।

सूंडी – अण्डों के फूटने के पश्चात् सूंडी निकलती है जिसका जीवन.काल काफी लम्बा होता है। यह अगले वर्ष के अप्रैल माह तक इसी अवस्था में रहती हुयी पौधों को क्षति ग्रस्त करती रहती है। इस अवधि में यह धीरे–धीरे वृद्धि करती है। सितम्बर के महीने में 1.5 सेमी. तथा दिसम्बर के महीने में पूर्ण विकसित होने पर लगभग 4.0 सेमी. बडी होती है। इसके शरीर पर छोटे–छोटे बाल होते हैं तथा शरीर के दोनों ओर गहरे भूरे दाग होते है। सूडी का सिर काला होता है।

कृमिकोष – पूर्ण विकसित सूंडी सुरंग के अन्दर ही भूरे.लाल रंग के कोष में बदल जाती है। मई मास तक सभी सूंडियॉ कोषावस्था में हो जाती हैं। कोषावस्था 3–4 सप्ताह की होती है तथा जून के अन्त तक प्रौढ कीट निकलते रहते हैं।

प्रौढ – प्रौढ कीट हल्के भूरे रंग का होता है जिस पर काले भूरे रंग के धब्बे होते है। पंख विस्तार लगभग 40मि. मी. होता है। अगले पंखों पर लम्बवत् गहरे भूरे रंग के धब्बे होते है जबकि पिछली जोडी पंखों का रंग धुयेंदार होता है। मादा प्रौढ नर की अपेक्षा बडी तथा रंग पीला होता है।

प्रौढ कीट निकलने के.बाद मैथुन करते हैं तथा मादा 2–3 दिन बाद अंडे देना प्रारम्भ कर देती है। वर्ष में केवल एक पीढी मिलती है।

नियंत्रण –

1. तनों, शाखाओं से जाली को अलग कर नष्ट कर देनी चाहिए।
2. तनों, शाखओं की सुरंगों में नुकीले तार को डालकर सूंडियों को मार देना चाहिए।

3. ग्रसित टहनियों तथा शाखाओं पर निम्न दवाओं में से किसी एक दवा का अच्छी प्रकार से छिड़काव करें–

कार्बारिल	–0.15%
इण्डोसल्फान	–0.07%
क्लोरपायरीफॉस	–0.05%
फैनीट्रोथियान	–0.07%

4. सुरगों में पेट्रोल या ई. डी. सी. टी. मिक्चर को रूई से भिगोकर भर दें तथा उसे गीली मिट्टी से बन्द कर दें।

4. नींबू की तितली

अन्य नाम – नींबू की सूंडी

वैज्ञानिक नाम – पैपीलियों डिमोलियस

गण – लैपिडोप्टैरा

कुल – पैपिलोयोनीडि

पोषक पौधे – इसकी सूंडी नींबू कुल के लगभग समस्त पौधों को नुकसान करती है।

वितरण – यह कीट भारतवर्ष के अतिरिक्त श्रीलंका, बर्मा, पाकिस्तान, जापान, तथा अफ्रीका में मिलता है। भारतवर्ष के लगभग सभी के प्रदेशों में हानि करते हुए पाया जाता है।

क्षति एवं महत्व– इस कीट की प्राय सूंडीः ही हानिकारक अवस्था होती है। जिसके काटने तथा चबाने वाले मुखांग होंते है। प्रौढ़ तितली संतति बढाने का कार्य करती है तथा कभी – कभी फूलों का रस चूसती है। सूंडी नींबू की पत्तियां खा लेती हैं तथा केवल डंठल ही शेष रह जाते हैं इससे पौधों की बढ़वार रूक जाती है तथा कभी–कभी तो सूख तक जाते है। इनकी संख्या अधिक होने पर मुलायम टहनियों को भी खाती हुई पाई गई हैं। इसका प्रकोप बरसात के दिनों में अधिक होता है। अगस्त–सितम्बर के महीनों में अधिक प्रकोप होने पर पौधों में फल भी नहीं लगते है।

जीवन चक्र– इसके जीवन चक्र में चार अवस्थाओं–अण्डा, सूंडी, कृमिकोष तथा प्रौढ़ मिलती है।

अण्डा– सर्वप्रथम तितली मार्च के महीनों में दिखाई पड़ती है तथा मैथुनोपरान्त मादा पत्तियों पर छोटे, गोल तथा चिकने अण्डे प्रायः एक–एक करके रखती है। कभी–कभी 2 से 5 के समूहों में भी अण्डे पाये गये हैं। पत्तियों के अतिरिक्त कभी–कभी अण्डे नींबू के कॉटों पर भी मिलते है। अण्डा प्रारम्भ में पीले–हरे रंग का होता है जो कि फूटने के समय भूरे रंग का हो जाता

है। अण्डा गर्मियों में 3 से 4 दिन तथा जाड़ों में 5 से 8 दिन में पककर फूटता है। मादा अपने जीवन काल में 75 से 120 अण्डे देती है।

सूंडी– अण्डे से निकलने के बाद सूंडी 3 मिमी. लम्बी होती है। यह अण्डे के खोल में एक गोल छेद करके बाहर निकलती है तथा उसी को सर्वप्रथम खाती है। उसकी यह आदत पूरे जीवन भर चलती है। सूंडी प्रत्येक मोल्ट के बाद छोडी हुई छाल को खा लेती है। सूंडी धीरे–धीरे बढ़ती हुई भूरे काले और सफेद रंग के पक्षियों के मल के समान होती जाती है। जिससे यह शत्रुओं से बची रहती है। गर्मियों में 8 से 16 दिन तथा जाडों में लगभग 28 दिनों में यह पूर्ण विकसित होती है। पूर्ण विकसित सूंडी हरे–पीले रंग की होती है। तथा शरीर के अन्तिम खंड के पृष्ठ सतह पर हार्न की तरह की संरचना होती है। इस समय यह लगभग 40 मिमी. लम्बी तथा 6.5 मिमी. चौड़ी होती है और शरीर के अगले भाग के कूबर निकली होती है। सूंडी अपनी रक्षा के लिये एक जोड़ी लाल सींग के समान संरचना सिर के अगले भाग निकालती है।

कृमिकोष– पूर्ण विकसित सूंड़ी या हरी टहनी के उपर कोषावस्था में बदलती है। कृमिकोष अपने शरीर के पिछले हिस्से से रेशमी धागों की सहायता से टहनी पर चिपका रहता है और मध्य का शरीर रेशम के दो धागों की सहायता से टहनी से लटका रहता है। कोषावस्था गर्मियों में 7 दिन जाडों 56–98 दिनों की होती है। जाड़े का समय इसी अवस्था में वयतीत करती है।

प्रौढ़– प्रौढ़ तितली प्रायः कृमिकोष से सुबह के समयस निकलती है यह नीले–हरे रंग की होती है तथा अगले पंखों पर काले और पीले धब्बे मिलते हैं देखने में यह काफी सुन्दर लगती है। पिछले पंख भी अगली जोड़ी की तरह होते है परन्तु इनके एनल भाग में एक ईंट के समान लाल धब्बा होता है। तितली लगभग 28 मिमि लम्बी होती है। इसके एन्टिनी काले रंग के दण्डाकार होते है।

तितली निकलने के प्रायः 1 दिन बाद मैथून करती है तथा दूसरे या तीसरे दिन से अण्डा देना शुरू कर देती है। नर तितली 3–5 दिन तथा मादा लगभग 1 सप्ताह जीवित रहती है। इसका सम्पूर्ण जीवन चक्र 20–137 दिनों में पूरा हो जाता है तथा वर्ष में कई पीढीयां मिलती है।

नियन्त्रण–

1. अधिक संख्या में होने पर सूंडियों को एकत्रित करके नष्ट कर देना चाहिये।
2. अधिक प्रकोप होने पर निम्न दवाओं में से किसी एक को 15 लीटर पानी में धोलकर प्रति पेड़ की दर से पौधों पर छिड़काव करना चाहिए।

- थायोडान 35 ई. सी. – 25.30 मि. ली
- डायमेक्रान 85 ई. सी. –5–6 मि. ली.
- एन्थिओ 25 ई. सी. – 30 मि.ली.

प्राकृतिक शत्रु – निम्न कीट इसकी सूंडी पर परजीवी होते है – उदाहरण इरीसिया पीम्फालिडोफेगा

5. फलों का रस चूसने वाले शलभ

वैज्ञानिक नाम – भारत में फलों का रस चूसने वाले शलभों की संख्या लगभग 20 है इनमें से कुछ प्रमुख निम्न हैं–

ओफीडेरस कान्जुकाटा, ओ. मेटरना, ओ. ओनसीला

गण– लेपिडोटेरा

कुल नोक्टूईडी

पोषक पौधे – मीठे नींबू, नारंगी, आम, सेब, नाशपाती, अनार, लोकाटा, लीची, अमरूद आदि। इनकी सूंडियां जंगली पौधों पर जैसे आदि पर अपना जीवन व्यतीत करती है।

वितरण– भारतवर्ष के अतिरिक्त ये श्रीलंका, आस्ट्रेलिया तथसा अफ्रीका में भी मिलता है। भारत के सभी स्थानों में पाये जाते हैं।

क्षति एवं महत्व– इस कीट के प्रौढ़ ही फलों का रस चूसते हैं तथा सूंडी जंगली पौधों पर जीवन निर्वाह करती हैं। प्रौढ़ कीट दिन में छिपे रहते हैं तथा रात्रि के समय निकलते हैं। पके फलों की सुगन्ध उन्हें आकर्षित करती है। ये अपने मुखांगो को पके फलों के अन्दर धुसाकर रस चूसते है। इस प्रकार बने हुये छिद्रों पर अन्य सूक्ष्म जीव, बैक्टीरिया तथा फफूंदी आदि का प्रकोप हो जाता है जिससे फल सड़ने लगते हैं तथा उससे गन्ध आने लगती है। ऐसी हालत में ये पेडों से टूट कर जमीन पर गिर पड़ते हैं। इनके द्वारा होने वाली क्षति का अनुमान 20–40 प्रतिशत तक लगाया गया है परन्तु प्रकोप अधिक होने पर कभी–कभी सारे फल ही नष्ट हो जाते है।

जीवन चक्र– इसके जीवन चक्र में 4 अवस्थाओं –अण्डा,सूंड़ी, कृमिकोष तथा प्रौढ़ पायी जाती है।

अण्डा– मादा कीट मैथुनोपरांत जंगली पौधों की पत्तियों पर अण्डे देती है। एक मादा अपने जीवन काल में 200 से 300 अण्डे देती है। प्रत्येक अण्डा 1 मिमी. व्यास का होता है। ये अण्डे 8 से 10 दिन में पककर फूटते है जिनसे सूंड़ी निकली है।

सूंड़ी– अण्डे से निकलते के 24 धन्टे के अन्दर ही सूंड़ी पोषक पौधों की पत्तियों को खाना प्रारम्भ कर देती है। यह सेमीलूपर कीट है जो कि कूबड़ निकाल कर चलती हैं। इसके सिर पर विशेष प्रकार के आई रंग के धब्बे होते है। शरीर के अन्तिम खण्ड पर पृष्ठ सतह के उपर पीले अथवा लाल रंग के धब्बे होते हैं। सूंड़ी 12–21 दिनों में पूर्ण विकसित होती है। तथा इस समय यह अधिक मोटी एवं बेलनाकार हो जाती है एवं इसका रंग गहरा भूरा होता है। यह अपने जीवन काल में 5 बार त्वचा निर्माचन करती है। पूर्ण विकसित सूंड़ी 50 से 60 मिमी. लम्बी होती है।

कृमिकोष– पूर्ण विकसित सूंड़ी पत्तियों को रेशम के धागे से जोड कर एक खोल सा बनाती है और उसी के अन्दर धँस कर रेशम का कोकन या खेल बना कर उसके अन्दर कोषावस्था में बदलती है। कोषावस्था 8 से 15 दिन की होती है।

प्रौढ़– प्रौढ़ 2.5 सेमी. लम्बा तथा पंख विस्तार 9 सेमी. होता है के अगले पंख भूरे होते हैं तथा उस पर कुछ हरे रंग का मिश्रण भी होता है। जबकि पिछला पंख नारगी या पीले रंग का होता है जिस पर काले धब्बे होते है। इनके मुखांग शक्तिशाली होते है। जिससे कि फलों पर चुभाये जा सके।

इसके शरीर का रंग हल्का नारंगी लिये हुये भूरा होता है। इसके अगली जोड़ी पंख गहरे भूरे रंग के तथा पिछली जोडी पंख नारंगी लाल रंग के जिस पर दो काले रंग धब्बे होते है।

नियन्त्रण–

1. सूंडी के पोषक पौधों को बागों के पास नहीं उगने देना चाहिये।
2. प्रौढ़ कीटों को प्रकाश प्रपंच के द्वारा नष्ट किया जा सकता है।
3. फलों का पकने के बाद तुरन्त तोड़ लेना चाहिये।
4. सायंकाल बाग के पास धुंआ करना चाहिये ताकि फलों की महक से पौढ़ उनकी आकर्षित न होने पाये।
5. निम्न बेट का प्रयोग कर कीट को नष्ट किया जा सकता है –
   - गुड़ का घोल 160 भाग
   - लेड आर्सनिट 1 भाग
   - सिरके की कुछ बूंदे

फलों के प्रमुख रोग एवं उनका समन्वित प्रबंधन

जी.एस. राठौड़

खजूर अनुसंधान केन्द्र, एस.के.आर.ए.यू., बीकानेर

हमारे दैनिक जीवन में फलों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। शरीर और स्वास्थ्य के लिये जिस प्रकार सब्जिया आवश्यक है, उसी प्रकार फल भी अत्यन्त आवश्यक है। शुष्क क्षेत्रों में मुख्य रूप से बेर, नींबू वर्गीय फलों, अनार एवं आंवला का उत्पादन किया जा सकता है। इन फलों के अच्छी गुणवता वाले उत्पादन में लगने वाले रोग मुख्य बाधक हैं, जिसका समय पर निदान करके उत्पादन की गुणवता एवं मात्रा में बढ़ोतरी की जा सकती है।

(अ) नींबू वर्गीय फलों में लगने वाले रोग व रोकथाम

1. नींबू का कैंकर रोग :

जीवाणु से होने वाले इस रोग से पत्तियों, टहनियों व फलों पर भूरे रंग के मध्य से फटे खूरदरे व कार्कनुमा धब्बे स्पष्ट दिखाई देते हैं। रोगी पत्तियां गिर जाती है, तहनियों व शाखाओं पर लम्बे घाव बन जाते हैं, जिससे तहनियां टूट जाती है। इस रोग से कागजी नींबू सर्वाधिक प्रभावित होता है। फलों पर रोग के धब्बों के कारण इनका बाजार मूल्य बूरी तरह प्रभावित होता है एवं रोगाग्रस्त फल शीघ्र ही सड़ने लगते हैं। अतः इनका समय रहते निदान एवं रोकथाम आवश्यक है। इसकी रोकथाम हेतु -

1. रोग ग्रस्त पत्तियों और टहनियों को नष्ट करें।
2. रोपण हेतु नये बगीचों में सदा रोग रहित नर्सरी के पौधे ही प्रयोग में लावें और रोपण से पूर्व पौधों पर ताम्रयुक्त कवकनाशी कॉपर आक्सीक्लोराइड (ब्लाइटोक्स) 0.3 प्रतिशत को घोल छिड़कें।
3. रोग के प्रकोप को रोकने के लिए कटाई छंटाई के बाद विशेषकर जून से अक्टूबर तक कॉपर आक्सीक्लोराइड (0.3 प्रतिशत) या स्ट्रेप्टोसाइक्लिन 250 मिलीग्राम एवं पुनः फरवरी-मार्च में छिड़काव करें अथवा स्ट्रेप्टोसाइक्लिन 250 मिलीग्राम एवं ताम्रयुक्त कवकनाशी दवा 3 ग्राम प्रति लीटर पानी के घोल का रोग के दिखाई देते ही 20 दिन के अन्तर पर दो छिड़काव करें। सामान्यतया कैंकर से ग्रसित पौधों पर चार छिड़कावल फरवरी, जुलाई, अक्टूबर तथा दिसम्बर में करें।

4. रोग के प्रकोप को रोकने के लिए स्ट्रेप्टोसाइक्लिन 100 मिलीग्राम एवं ताम्रयुक्त कवकनाशी दवा 2 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर अथवा स्यूडोमोनास फ्लोसेन्स जैविक उत्पाद 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर पन्द्रह दिन के अन्तराल पर दो छिड़काव करें।

2. विदरटिप या डाईबैक रोग

इस रोग से पत्तियों पर भूरे बैंगनी धब्बे बन जाते हैं। टहनियां ऊपर से नीचे की ओर सूखती हुई भूरी हो जाती है और पत्तियां सूख कर गिर जाती हैं, पौधा ऊपर से सूख कर मरना शुरू हो जाता है।

इस रोग के नियन्त्रण हेतु रोगी भागों की छंटाई के बाद ताम्र युक्त कवकनाशी (कॉपर आक्सीक्लोराइड) 3 ग्राम या मैकोजेब 2 ग्राम प्रति लीटर पानी के घोल का छिड़काव वर्षा ऋतु में 15 दिन व गर्मियों में 20 दिन के अन्तरल पर करना चाहिये। इसके अतिरिक्त वर्ष में दो बार (फरवरी और अप्रैल) में सूक्ष्म तत्वों का छिड़काव करें।

3. फाइटोफ्थोरा गलन/गोंदाति (गोमासिस) रोग

फाइटोफ्थोरा गलन के कारण पौधों की जड़ें एवं तने की छाल गलने लगती है तथा पत्तियां अन्दर की ओर मुड़ जाती हैं। तनों पर भूमि के पास से और टहनियों के रोग ग्रस्त भाग से गोंद जैसा पदार्थ निकलकर छाल पर बून्दों के रूप में इकट्ठा हो जाता है, जिसकी वजह से छाल सूख कर फट जाती है और भीतरी भाग भूरे रंग का हो जाता है। रोग के प्रकोप से अंत में पौधा मरने की स्थिति में पहुंच जाता है।

इस रोग के नियंत्रण हेतु तने या टहनी की रोग ग्रस्त छाल को हटाकर रिडोमलि एम.जेड-72 की 20 ग्राम मात्रा प्रति लीटर अलसी के तेल में घोल बनाकर रोग ग्रसित भाग पर लेप कर दें। साथ ही रिडोमिल एम.जेड- 72 डब्ल्यूपी 25 ग्राम प्रति पौधे के हिसाब से 40-45 लीटर पानी में घोल बनाकर पौधे की जड़ों को भिगो दें अथवा ट्राइकोडमी हारजैनियम की 60 ग्राम प्रति पौधा के हिसाब से जड़ों के चारों तरफ खूरपे से मिट्टी में मिलाकर 40-50 लीटर पानी पौधे के चारों तरफ भूमि पर छिड़काव करें। इन समस्त क्रियाओं को फरवरी व अगस्त माह में करें तथा भूमि उपचार (रिडोमिल/ट्राइकोड्रमा) को दोनों माह में 15 दिन के अन्तराल पर दोहरायें।

बाग में पानी का प्रबन्धन इस प्रकार करें कि पानी तने के सीधे सम्पर्क में न आवें

तथा रोग ग्रसित पौधे का पानी, स्वस्थ पौधे में न जावें। इसके अतिरिक्त बगीचे में देखभाल पानी के अच्छे निकास, छूप, हवा आदि का ध्यान रोग से बचाव के लिए आवश्यक है।

4. फलों का गिरना :

फलों की तुड़ाई के 5 सप्ताह पहले फल गिरने लग जाते हैं। इनकी रोकथाम के लिए एक ग्राम 2-4 डी होर्टीकल्चर ग्रेड या सोडियम 2-4 डी 4 से 5 मिली को 100 लीटर पानी में मिलाकर किन्नों और मौसमी के वृक्षों पर छिड़काव करना चाहिए।

(ब) बेर में लगने वाले प्रमुख रोग उनकी रोकथाम के उपाय

1. छाछया या चूर्णी फफूंद

इस रोग का प्रकोप जाड़ों में अक्टूबर माह में दिखाई पड़ता है। बेर की टहनियां, पत्तियां एवं फल, सफेद कवक आवरण से ढक जाते हैं। प्रभावित पत्तियों एवं फलों की वृद्धि रूक जाती है और फल गिर जाते हैं।

रोग के नियन्त्रण हेतु केराथेन एल.सी. 0.1 प्रतिशत या घूलनशील गंधक 0.2 प्रतिशत की तीन छिड़काव, प्रथम फूल आने से पहले और दो फूल आने के बाद 15-15 दिन के अन्तराल पर करने चाहिए। इसके अतिरिक्त कार्बेडेजिम (बाविस्टीन) 1 ग्राम लीटर पानी का घोल का छिड़काव उतना ही लाभकारी है।

2. पत्ती धब्बा/झुलसा रोग

यह रोग अल्टरनेरिया आफिस्लेनेटा नामक फफूंद से फैलता है, जो नवम्बर माह में दिखाई पड़ता है। रोगी पत्तियों पर छोटे-छोटे भूरे रंग के धब्बे बनते हैं तथा बाद में ये धब्बे भूरे रंग के तथा आकार में बढ़कर पूरी पत्ती पर फैल जाते हैं। पत्तियां सूख कर गिरने लग जाती है।

नियन्त्रण हेतु रोग दिखाई देते ही मैकोजेब 3 ग्राम या थायोफिनेट मिथाइल एक ग्राम दवा प्रति लीटर पानी के हिसाब से 15 दिन के अन्तराल पर दो छिड़काव करने चाहिये।

3. जड़ गलन रोग

इस रोग के कारण पौधों की जड़ों तथा भूमि के पास वाले तने के भाग पर आक्रमण होता है, रोगी पौधे सूख जाते हैं।

नियन्त्रण हेतु बीज को दो ग्राम कार्बेडेजियम प्रति किलो बीज के हिसाब से

उपचारित करके नर्सरी में बोयें अथवा कार्बेडेजिम दो ग्राम प्रति लीटर पानी के घोल से भूमि को उपचारित करें।

(स) आंवले के प्रमुख रोग व रोकथाम के उपाय

1. आंवला का रोली रोग :

इसके प्रकोप से अगस्त माह में पत्तियों पर रोली के धब्बे बन जाते हैं, पत्तों पर काले धब्बे बनते हैं, जो कभी-कभी पूरे फल पर भी फैल जाते है, रोगी फल पकने से पहले ही झड़ जाते हैं।

नियन्त्रण हेतु बेलीटान एक ग्राम या घुलनशील गंधक अथवा क्लोरोथेलोनिल दो ग्राम प्रति लीटर पानी के हिसाब से 15 दिन के अन्तराल जुलाई माह से तीन छिड़काव करें।

2. उत्तक क्षय रोग

रोग का कारण बोरोन की कमी है। इसके कारण फल का गुदा अन्दर से भूरा काला पड़ जाता है। रोकथाम हेतु सितम्बर-अक्टूबर माह में 0.6 प्रतिशत बोरेक्स के घोल का छिड़काव पौधों पर करें। जिंक सल्फेट (0.4 प्रतिशत), कापर सल्फेट (0.4 प्रतिशत) तथा बोरेक्स (0.4 - 0.06 प्रतिशत) का संयुक्त छिड़काव भी लाभप्रद होता है।

3. फल सड़न रोग

इस रोग से फलों पर भूरे रंग के धब्बे पड़ जाते हैं, बाद में फल सड़ने लगते हैं। नियन्त्रण हेतु मैकोजेब 2 ग्राम प्रति लीटर पानी के हिसाब से छिड़काव करें।

(द) अनार के प्रमुख रोग व रोकथाम के उपाय

पत्ती धब्बा एवं फल सड़न रोग

वर्षा शुरू होते ही पत्तियों पर छोटे-छोटे भूरे रंग के धब्बे बनते हैं तथा बाद में ये धब्बे भूरे काले रंग के हो जाते हैं। रोगी पत्तियां गिर जाती हैं। वातावरण में अधिक नमी होने पर फल एवं कलियों पर काले धब्बे बन जाते हैं तथा धीरे-धीरे रोगी फल सड़ जाते हैं।

रोग की रोकथाम हेतु टोपसीन एम. 1 ग्राम या जाइनेव या मैकोजेब दो ग्राम प्रति लीटर पानी के हिसाब से 15 दिन के अन्तर पर छिड़काव करना चाहिए। जीवाणु धब्बे हेतु स्ट्रेप्टोसाइक्लीन 200 पीपीएम अथवा इसी के साथ कापर आक्सीक्लोराइड दो ग्राम प्रति लीटर का छिड़काव करें।

2. पत्ती मोड़क (बरूथी) रोग

माह सितम्बर में रोग के प्रकोप से पत्तियां सिकुड़ कर मुड़ जाती है, जिससे पौधे की प्रकाश संश्लेषण क्रिया पर विपरीत प्रभाव पड़ता है तथा पौधे की बढवार व फलन प्रभावित होता है।

नियन्त्रण हेतु सितम्बर माह में मोनोक्रोटोफॉस 1 मिली प्रति लीटर पानी के दर से छिड़काव करना चाहिये।

अतः किसान भाइयों फलों में लगने वाले प्रमुख रोगो का समय रहते नियन्त्रण कर लिया जाये तो अच्छी गुणवता, भरपूर पैदावार वाले फल प्राप्त कर बाजार में अच्छा मुनाफा प्राप्त किया जा सकता है।

*****

फल वृक्षों में कटाई-छंटाई का महत्व

भूप सिंह चौधरी
एन.एफ.एस.एम., कृषि विभाग, बीकानेर

फलों का उपयोग हमारे जीवन के लिए विशेष महत्व रखता है। मनुष्य के भोजन में संतुलित आहार के लिए फलों एवं सब्जियों का होना नितान्त आवश्यक होता है। यह सर्वविदित है कि फलों में सभी प्रकार के पोषक पदार्थ पाये जाते हैं, जैसे-विटामिन तथा खनिज लवण इत्यादि।

फल वृक्षों के बेहतर स्वास्थ्य एवं उत्पादन क्षमता बनाऐ रखने के लिए खाद, उर्वरक, सिंचाई आदि क्रियाओं के साथ-साथ उनकी देखभाल विशेषकर कटाई-छंटाई का भी विशेष महत्व रहता है। बहुत से फल वाले पौधों में अगर कटाई-छंटाई की क्रिया न की जाऐ तो वे जंगली पौधों की तरह बढ़ने लगते हैं तथा उन पर कोई भी फल पैदा नहीं होते। सभी फल वृक्षों में कांट-छांट की क्रिया आवश्यक नहीं होती। बहुत से सदाबहारी मैदानी फल वाले पौधों, जैसे - आम तथा चीकू में कांट-छांट की क्रिया में केवल मरी या सूखी हुई शाखाओं को काटा जाता है। इसी प्रकार से छोटे फल वाले पौधों, जैसे - केला, अनन्नास तथा पपीता आदि को अपनी प्राकृतिक अवस्था में ही बढ़ने दिया जाता है। इसके दूसरी तरफ बहुत से पर्णपाती फल वृक्षों, जैसे - अंगूर, बेर, सेब आदि को नियमित रूप से कांट-छांट की आवश्यकता होती है। नींबू प्रजाति के फल, अनार तथा अमरूद में प्रारम्भिक कांट-छाट की क्रिया के अन्दर कुछ शाखाओं को अच्छी आकृति देने के उद्देश्य से काटा-छांटा जाता है।

"पौधों के अन्दर उनकी वृद्धि और स्वास्थ्य तथा फल उत्पादन में एक संतुलन कायम रखने के उद्देश्य से जो कांट-छांट की क्रिया की जाती है, कृन्तन कहलाती है।"

कृन्तन के मुख्य उद्देश्य –

1. पौधों को कृन्तन द्वारा बनावटी ढंग से आराम देना।
2. फल वृक्षों को छोटी अवस्था से काटा-छांटा जाता है तो उनके अधिक शक्तिशाली ढांचे बनकर तैयार हो जाते हैं तथा वे तेज हवा, आंधी-तूफान इत्यादि में अधिक सुगमता से नहीं टूटते हैं।
3. अंलकृत पौधों को कटाई-छंटाई द्वारा सुन्दर बनाने के लिए किसी आकृति में बदल दिया जाता है।
4. बहुत से फल वाले पौधे ऐसे हैं, जिनमें फल नयी निकली शाखाओं पर बनते हैं। फलों की तोड़ाई के पश्चात् ऐसी शाखाओं को काट देना चाहिए, जिससे अगली फसल के लिए नयी शाखाओं की वृद्धि हो सके।
5. घने फल-वृक्षों की शाखाओं को कांट-छांट कर पौधे को खोल देते हैं, जिससे

हवा व प्रकाश की अधिक मात्रा पौधे के अन्दर प्रविष्ट हो सकें।

6. कृन्तन द्वारा पौधों को छोटा बना दिया जाता है, जिससे छिड़काव एवं धुमीकरण कम समय तथा कम खर्च के साथ सुगमतापूर्वक किया जा सके।

7. कृन्तन क्रिया द्वारा पौधों का घनापन दूर हो जाता है तथा उनकी ऊंचाई भी कम हो जाती है, जिससे फलों की तुड़ाई सुगमतापूर्वक कम समय तथा कम खर्च के साथ की जा सकती है।

8. बीमारियों एवं कीड़ों की रोकथाम के लिए पौधों के ऐसे हिस्सों को काटकर अलग कर दिया जाता है, जिन पर कीड़ों का प्रकोप है या रोगग्रसित है, जिससे ये और आगे न पनप कर हानि पहुंचा सकें।

9. कृन्तन क्रिया द्वारा कम उत्पादन करने वाली या बेकार की शाखाओं को काटकर पौधे का खाद्य-पदार्थ फल उत्पन्न करने वाली शाखाओं की तरफ अग्रसर किया जा सकता है? जिससे फल बड़े आकार के व अधिक मात्रा में प्राप्त हो सके।

कृन्तन के सिद्धान्त

1. सर्वप्रथम पौधे से मरी या सुखी हुई, रोग ग्रसित एवं कमजोर शाखाओं को काट कर अलग कर देना चाहिए।

2. पौधों की घिनकी आर-पार जाने वाली तथा एक दूसरे पर चढ़ी शाखाओं को काट कर पौधों को खुला बना देना चाहिए।

3. जो शाखाऐं जमीन के बहुत सम्पर्क में हो, काट देनी चाहिए।

4. शेष बची हुई शाखाओं को या उनके कुछ हिस्से को इस प्रकार काटना चाहिए कि कटान साफ एवं सीधे हों तथा शाखा के उपर की तालिका बाहर की तरफ रहे। तत्पश्चात् कटे भागों को पेन्ट कर देना चाहिए।

5. अगर पौधों में कार्बोहाइड्रेट की कमी से फलत कम होती है तो जड़ों का कृन्तन कुछ मात्रा में कम कर देना चाहिए।

कृन्तन के प्रकार

1. पौधों की शाखाओं का कृन्तन करना। (Pruning of branches)
2. जड़ों का कृन्तन करना। (Root pruning)
3. कृन्तन की अन्य विधियां - तना, पत्ती, फूल एवं फल कृन्तन।

1. पौधों की शाखाओं का कृन्तन करना –

(क) "पौधे की अवांच्छित शाखाओं या प्ररोहों की जब पूर्ण रूप से बिना कोई अवशेष या ढूंढ छोड़ते हुए काट दिया जाता है, तो इस क्रिया को "थिनिंग" कहा जाता है।"

इस क्रिया को करने से पौधे की शक्ति को एक शाखा से दूसरी शाखा में पहुंचाया जा सकता है। इस विधि से पौधों की वृद्धि भी अच्छी होती है तथा फलत भी।

(ख) "जब पौधे की सभी शाखाओं के अग्रम या ऊपरी हिस्से काट दिये जाते हैं तथा नीचे का हिस्सा जुड़ा छोड़ दिया जाता है तो इस क्रिया को "हैडिंग बैक" कहा जाता है।"

इस क्रिया का मुख्य उद्देश्य पौधे की शक्ति को शाखा के एक हिस्से से दूसरे हिस्से में पहुंचाना होता है। जब शाखा का ऊपरी भाग काट दिया जाता है तो कटे हुए भाग के नीचे से बहुत सी शाखाऐं पैदा होती हैं, जो फलों की अच्छी मात्रा उत्पन्न करती है।

2. जड़ों का कृन्तन करना –

जड़ कृन्तन के द्वारा पौधों में फलत को बढ़ाया जाता है। यह क्रिया स्थान तथा पौधों की किस्म के अनुसार विभिन्न प्रकार से की जाती है, लेकिन उसका प्रभाव एक समान ही होता है। जड़ कृन्तन कि क्रिया करने के उद्देश्य से फूल आने से चार महिने पहले सिंचाई बन्द करके पौधे के चारों तरफ की मिट्टी को सूखने दिया जाता है, जिससे पौधे की पत्तियां धीरे-धीरे पूर्ण मात्रा में गिर जाती है। फूल आने से एक माह पहले छोटी जड़ों को काटकर निकाल देते हैं तथा बड़ी जड़ों को कुछ समय के लिए खोल दिया जाता है। इस क्रिया को सम्पन्न करने के लिए कभी-कभी पौधे के चारों तरफ 60 सेमी. के अर्द्धव्यास में मिट्टी को 10 से 15 सेमी. की गहराई तक खोदकर निकाल देते हैं। मूल कृन्तन की दूसरी विधि में पौधों की गोलाई के बाहरी किनारे पर 75 से 90 सेमी. गहरी खाई खोद दी जाती है तथा इसको पार करने वाली सभी जड़ों को काट दिया जाता है।

क्रिया करने के कुछ समय उपरान्त खाई को ताजी मिट्टी तथा अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद का मिश्रण भर दिया जाता है। पहले हल्की और बाद में गहरी सिंचाई कर देते हैं। ऐसा करने से पौधे में नई पत्तियां निकल आती है तथा कार्बोहाइड्रेट की पौधे में अधिक मात्रा होने के कारण फूल अधिक पैदा होते हैं।

मूल कृन्तन को वर्षा ऋतु में करना उचित समझा जाता है।

पौधों की सिंचाई बन्द करने एवं जड़ें काट देने से नत्रजन का शोषण प्रायः बन्द हो जाता है, लेकिन पौधे पर जब तक पत्तियां रहती है कार्बोहाड्रेट तैयार होता रहता है, जिसका अधिकाशतः भाग वृद्धि न होने से पौधे में इकट्ठा होता रहता है। पौधों की खाई भरते समय खाद तथा बाद में पानी देने से नई वृद्धि होने लगती है तथा काबोहाइड्रेट की मात्रा पहले से ही पौधे में होने की वजह से फूल अधिक मात्रा में पैदा होते हैं। यह क्रिया सी : एन अनुपात बढ़ने से ही सम्पन्न होती है।

हल्के रूप में मूल कृन्तन पौधों में कुछ दिनों के लिए पानी बन्द करके या हल द्वारा जुताई करके सम्पन्न की जा सकती है, जिसके परिणामस्वरूप पौधों की ऊपरी स्तर पर रहने वाली छोटी-छोटी जड़ें पानी के अभाव में सूख जाती है या हल द्वारा जुताई करने से काट दी जाती है।

3. कृन्तन की अन्य विधियां

पिन्चिंग (Princhíng) - इस क्रिया के अन्तर्गत तने या शाखाओं के ऊपर सिरे दो-तीन पत्तियों के साथ तोड़ दिए जाते हैं। इसको हम "Heading back" का ही एक रूप मान सकते हैं। इसको अधिकतर एक वर्षीय अलंकृत पौधों में अपनाते हैं।

वलयन (Ringing) - किसी तने या डाली से लभग 1-1.5 सेमी. लम्बाई में छाल जब वलय के रूप में काटकर निकाल दी जाती है तो इस क्रिया को वलयन (Ringing) कहा जाता है। इस क्रिया से पत्तियों द्वारा निर्मित कार्बोहाइड्रेट वलय से ऊपर शाखा में तब तक इकट्ठा होता रहता है। जब तक कि वलय का घाव पूर्ण रूप से भर नहीं जाता। इस उद्देश्य की पूर्ति वनय के स्थान पर तार कसकर बांधने से भी हो सकती है, जिसको "Girdling" कहा जाता है। शाखाओं के ऊपरी भागों में कार्बोहाइड्रेट की मात्रा बढ़ जाने से फल कलिकाएं अधिक मात्रा में पैदा होती है।

फल और फूलों का विरलीकरण :

इस क्रिया के अन्दर फूलों या छोटे फलों को गुच्छे से निकाल देते हैं, जिससे फल अच्छी किस्म एवं बड़े आकार के मिलते हैं। आम में प्रत्येक वर्ष कुछ फूलों की मात्रा तोड़ देने से नियमित फसल ली जा सकती है।

क्लीनिंग - इस क्रिया के अन्दर पौधे से सुखी या मरी हुई लकड़ी तथा बहुत अधिक कमजोर शाखाओं को पौधे से काटकर अलग कर दिया जाता है।

स्ट्रिपिंग - जब पौधे की छाल वलय आकर में न निकलकर लम्बाई में समानान्तर पट्टियों में निकाली जाती है तो उसको स्ट्रिपिंग कहा जाता है। पट्टी की लम्बाई 1.25 सेमी से 2.5 सेमी. तक रखी जाती है।

डिहोर्निंग - जब फल वृक्षों की शाखाऐं काट कर अलग कर दी जाती है तो इस विधि को डिहोर्निंग कहते हैं। यह क्रिया तब की जाती है, जबकि पौधे की डालियां फल भार के कारण मुड़ जाती है।

कृन्तन का समय

सदाबहारी फल वाले पौधों का कृन्तन फल आने के समय एवं उनकी पैदा होने की आदत के ऊपर निर्भर करता है। ऐसे फल वृक्ष जिनमें फल एक वर्ष पुरानी शाखाओं पर पैदा होते हैं, कृन्तन की क्रिया फलों की तुड़ाई के बाद करनी चाहिए। इसमें ऐसी शाखाएं काट देनी चाहिए, जो फसल दे चुकी हो, जिन फल वृक्षों में फलत नई शाखाओं पर होती है, उनमें कृन्तन फूल पैदा होने के इतने समय पहले कर देना चाहिए कि नई शाखाऐं निकलकर फूल पैदा कर सके।

पर्णपाती फल वृक्षों का कृन्तन उनकी सुषुप्तावस्था के समय करना चाहिए, जिससे सुषुप्तावस्था समाप्त होते ही वे फल खूंटियां तैयार कर सकें।

सूखी या मरी हुई तथा रोग ग्रस्त शाखाओं को पड़े से किसी भी समय काटा जा सकता है।

कृन्तन की मात्रा

कृन्तन के समय पौधे का कितना भाग काटा जाए, यह फल वृक्षों के स्वभाव एवं उसके स्वास्थ्य के ऊपर निर्भर करता है। यह पूर्णतः स्पष्ट है कि आवश्यकता से अधिक कृन्तन करने से पौधे कमजोर हो जाते हैं तथा उनमें फलतः भी कम होती है।

कृन्तन के औजार

1. कृन्तन का चाकू (Pruning Knife)
2. कृन्तन की कैंची (Pruning Shears)
3. सैकेटियर्स (Secateurs)
4. कृन्तन की आरी (Pruning Saw)
5. कृन्तन का गंडासा (Bill hook)
6. ट्री प्रूनर (Tree Pruner)
7. लूपर्स (Loopers) इत्यादि।

ट्रेनिंग

पौधों की प्रारम्भिक अवस्था में जो भी कृन्तन की क्रिया उनको विशेष आकार देने के लिए की जाती है, उसको "ट्रेनिंग" कहा जाता है। फल वाले पौधों में यह प्रारम्भिक अवस्था उन पर फल पैदा होने से पहले की होती है। उस समय पौधों को, उनकी वृद्धि एवं फलत की आदत को ध्यान में रखकर किसी निश्चित आकार में बदल दिया जाता है तथा बाद में उनके ढांचे को निश्चित आकार में रखने के अभिप्राय से अवांछित शाखाओं को काटते रहते हैं।

हमारे यहां के मैदानी फल वृक्षों में ट्रेनिंग की कोई खास आवश्यकता नहीं होती है, लेकिन पहाड़ी क्षेत्र में उगाए जाने वाले पर्णपाती फल वृक्षों को ट्रेनिंग की मुख्य आवश्यकता होती है। फल लताओं, जैसे अंगूर इत्यादि को उनकी झुकाकार सामानान्तर लगे तारों पर परगोला की छत या लकड़ी पर चढ़ाकर ट्रेन किया जाता है।

सीधे वृद्धि करने वाले पर्णपाती वृक्षों, जैसे सेब, नागपाती आदि को निम्न तीन विधियों द्वारा ट्रे किया जाता है -

(1) संवृत केन्द्रीय अग्रणी विधि

ट्रेनिंग की इस विधि में पौधे के मुख्य तना बढ़ने दिया जाता है, जिसके चारों तरफ से बहुत सी शाखाएं निकलकर ऊपर की तरफ फैल जाती है। इन शाखाओं की लम्बाई नीचे से अधिक तथा ऊपर से कम होती है। ऐसे फल वाले पौधे सीधे लेकिन ऊपर से झाड़ीनुमा हो जाते हैं। इस विधि में पौधे का ढांचा मजबूत बनकर तैयार होता है, जिससे तेज हवा या आंधी में पौधे टूटते नहीं हैं। पौधों की लम्बाई अधिक हो जाने से कृन्तन करने, फलों को तोड़ने तथा दवाई इत्यादि छिड़कने में असुविधा अधिक होती है व खर्च बढ़ जाता है।

(2) भृंगाकार

फल वृक्ष को छोटी अवस्था से ही भूमि से 45 से 60 सेमी. छोड़कर काट देते हैं। तने के चारों तरफ से निकली हुई शाखाऐं फैलकर वृक्ष के सिरे को भृंगाकार रूप देती है। इन शाखाओं को भी दूसरे वर्ष कुछ मात्रा में काट दिया जाता है। पौधे के मध्य भाग खुला होने से प्रकाश तथा वायु का संचार सुचारू रूप से होता है, जिससे फल अच्छी किस्म के व अधिक चमँकदार पैदा होते हैं। पौधे की ऊंचाई कम होने से शाखाओं की कृन्तन, फलों की तुड़ाई तथा दवाई के छिड़काव में भी कम खर्च होता है।

(3) संपरिवर्तित अग्रणी विधि

यह उपर्युक्त दोनों विधियों का मिश्रित रूप है। इसमें पौधे को शुरू में पहली विधि द्वारा ट्रेन किया जाता है तथा ऊपरी दूसरी विधि का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार ट्रेन किया फल वृक्ष उपर्युक्त दोनों विधियों से लाभ उठाता है। इसमें पौधे का ढांचा भी मजबूत बनता है तथा पौधे की ऊंचाई कम होने से फलों की तुड़ाई, कन्तन एवं दवा के छिड़काव में सुविधा होती है।

उपर्युक्त विधियों में तीसरी विधि को अधिक महत्त्व दिया जाता है, क्योंकि यह विधि सबसे अच्छी है तथा इसमें लाभ भी अधिक मिलते हैं।

*****

फलोत्पादन में पादप वृद्धि नियंत्रक : महत्व तथा विधियाँ

एन. एस. नाथावत, वी.एस.राठौड़ एवं सीमा भारद्वाज
के.शु.क्षे.अ.सं., प्रादेशिक अनुसंधान स्थात्र, बीकानेर (राज.),

पौधे अपनी वृद्धि और विकास के लिए जड़ों द्वारा अवशोषित कार्बनिक और अकार्बनिक पोषक तत्वों के साथ–साथ अन्य विशिष्ट कार्बनिक यौगिकों की भी आवश्यकता होती है, जो पौधों द्वारा संश्लेषित किये जाते हैं और उसी में रहकर पौधे की वृद्धि और विकास को प्रोत्साहित किरते हैं। ऐसे कार्बनिक पदार्थ पादप हार्मोन कहलाते हैं। ये जटिल रसायनिक पदार्थ बहुत ही न्यून मात्रा में पौधों के विभिन्न अंगों में उत्पन्न होकर अपना वृद्धि पर सक्रिय प्रभाव दिखाते हैं। ऐसे पदार्थ सामान्यतः हारमोन्स अथवा पादप नियंत्रक अथवा वृद्धि नियामक या वृद्धि पदार्थ कहलाते हैं। इनका प्रयोग करने पर पत्तियों द्वारा शीघ्रता से शोषित कर लिये जाते हैं और तन्तुओं के प्रभाव स्वरूप अतिशीघ्र गतिशील बन जाते हैं। पौधों की बढ़वार, फूल लगने, फल व उसके उत्पादन में परिवर्तन लाने में पौध वृद्धि नियामकों (पादप नियामकों) का काफी योगदान रहता है।

पादप हार्मोन

वे कार्बनिक पदार्थ जो पौधे के किसी भाग में उत्पन्न होते हैं और दूसरे भाग में स्थानान्तरित हो जाते हैं, जहां के अल्प मात्रा से पादप क्रिया को प्रभावित करते हैं। जैसे-वृद्धिकारक, ऑक्सिन, जिबेरेलिन तथा साईटोकाइनिन, वृद्धि निरोधक, एब्सिसिक अम्ल।

पादप वृद्धि नियन्त्रक

ये संश्लेषित कार्बनिक पदार्थ जो रसायनिक संरचना में हार्मोन के समान हो तथा पादप हर्मोन की तरह कार्य करता हो, उसे पादप नियन्त्रक कहते हैं। उदाहरण - इन्डोल ब्यूटारिक अम्ल (आईबीए), नेफ्थीलीन एसिटिक अम्ल (एन.ए.ए.), 2,4-डाईक्लोरो फिनाक्सि एसीटिक अमल (2.4-डी), 2,4,5– ट्राईक्लोरो फिनाक्सि एसिटिक अम्ल (2,4,5-टी) आदि।

पादप वृद्धि निरोधक

वे सभी संश्लेषित कार्बनिक पदार्थ जो पादप वृद्धि को दबाते हैं या वृद्धि क्रिया में रूकावट उत्पन्न करते हैं। उदाहरण - फास्फोन-डी, सी.सी.सी. (साइकोसील), बी-995, एएमओ-1618 आदि।

हार्मोन कब, कितना और कैसे प्रयोग करें

हार्मोन कब कितना और कैसे प्रयोग करें, यह निर्भर करता है कि फसल का आर्थिक उत्पाद क्या है ? जैसे पत्ती, फल, फूल, बीज, तना या जड़। इन सबको ध्यान में रखकर फिर हार्मोन का चुनाव करते हैं कि हमें पौधों में वृद्धि करनी है या पौधों की वृद्धि को रोकना है। इस प्रकार उपयुक्त हार्मोन का उचित समय पर प्रयोग करने से पौधे में कार्बन-नाइट्रोजन का अनुपात संतुलित होता है, पौधे के बसंतीकरण, प्रदीप्तिकाल तथा आर्थिक उत्पाद अवरोधक कारक कम करता है, जिससे उत्पादन में वृद्धि होती है। हार्मोन 3.
की मात्रा सबसे महत्वपूर्ण कारक है। यह फसल की प्रजाति और फसल के प्रकार पर निर्भर करता है। हार्मोन की मात्रा तापमान, भूमि की उर्वरता और पौधों को उपलब्ध नमी की मात्रा पर निर्भर करता है। हार्मोन की मात्रा प्रयोग की विधि (पत्ती पर छिड़काव या जड़ में प्रयोग) पर निर्भर करता है। चौड़ी पत्ती तथा संकरी पत्ती पर अलग हार्मोन का अलग-अलग प्रभाव पड़ता है।

हार्मोन का उपयोग

वर्तमान युग में हार्मोन का उपयोग फलों की विभिन्न समस्यों के निदान के लिए 4.
हो रहा है, जो इस प्रकार है -

1. कायिक प्रवर्धन - कायिक प्रवर्धन की विभिन्न तकनिकों के विकास के फलस्वरूप फलदार पेड़ों से अच्छी फसल लेना संभव हो गया है। पादप वृद्धि नियामकों का प्रयोग फलों के पौधों की कायिक पुनः प्राप्ति के लिए सफलतापूर्वक किया जाता रहा है। इन्हें जड़ों की वृद्धि को प्रेरित करने और मूलकांड तथा मूलांकुर के बेहतर मेल द्वारा कलम उगाने की तकनीक को सफल बनाने में किया जाता है। फल वृक्षों में अपने गुण के समान नये पौधों को तैयार करने के लिए कायिक प्रवर्धन महत्त्वपूर्ण है। इसमें गूटी बांधना, कलम लगाना तथा कालिका लगाना महत्त्वपूर्ण विधि है। गूटी तथा कलम में जड़ निकलने के लिए ऑक्सिन का प्रयोग करते हैं। संश्लेषित ऑक्सिन, आईबीए, 2,4-डी, एनएए के सान्द्र विलयन में कम समय तक तनु विलयन में अधिक समय तक कलम को डुबोकर लगाने पर जड़ तेजी से निकलती है और आसानी से लग जाती है।
2. सुषुप्तावस्था - सुषुप्तावस्था पर इन रसायनों के निम्नलिखित प्रभाव हो सकते हैं-

* बीज की सुषुप्तावस्था को तोड़ने के लिए जी.ए. का प्रयोग कियाजाता है। जी.ए.-3 से 25 पी.पी.एम. की सान्द्रता से बीज को उपचारित करने से सुषुप्त बीज में अंकुरण होता है।
* सेब, संतरा आदि के बीज को अंकुरण के लिए शीतनिष्क्रियता तथा कुछ के लिए प्रकाश की आवश्यकता होती है। इन बीजें के जी.ए. से उपचारित करने पर इसकी अंकुरण क्षमता में वृद्धि होती है।

फूलों का निकलना - फूलों का निकलना विभिन्न कारक प्रदीप्तिकाल, बसंतीकरण, कार्बन-नाइट्रोजन अनुपात आदि पर निर्भर करता है। ऑक्सिन के प्रयोग से निंबू और अनार में अधिक फूल निकलते हें। वृद्धि निरोध हार्मोन कोल्तार को जड़ में प्रयोग करने से आम, नींबू, तथा अंगूर में फूल अधिक निकते हैं। मैलिक हाइड्राजायड तथा 2,3,5-टी जनन अंगों के विकास में सहायता है। सेब में फूलों की संख्या को बढ़ता हैं। फ्लोरीजोन हार्मोन फूल निकलने के लिए उत्तरदायी हैं, जो अन्य हामोर्न द्वारा प्रभावित होता है।

फलों के लगने, झड़ने से बचाना, गुणों में वृद्धि करना एवं बीज रहित फल के उत्पादन (पार्थेनोकार्पी): -

* नींबू वर्गीय फसल में फलों का गिरना एक सबसे बड़ी समस्या से बचने के लिए 2,4-डी (10 पी.पी.एम.), 2,4,5-टी (25 पी.पी.एम.), एन.ए.ए. (30 पी.पी.एम.) का छिड़काव करते हैं। पपीते में इथाइलिन का उपचार देने से अधिक मात्रा में पपेन प्राप्त होता है। अमरूद, नींबू वर्गीय पौधों में अच्छे गुण के फल प्राप्त करने के लिए बहार नियन्त्रण किया जाता है। इसके लिए सीसीसी (साइकोसील), एस.ए.डी.एच. का प्रयोग करते हैं।
* अच्छी उपज के लिए फलों का पर्याप्त मात्रा में बनना अनिवार्य है। फलों का निर्माण निषेचन या फिर बगैर निषेचन के विकसित होते हैं तो उन्हें अनिषेक जनति कहा जाता है। बीज रहित फल के उत्पादन में साईटोकाइनिन, जिबेरेलिन और ऑक्सिन हार्मोन का उपयोग तेजी से बढ़ रहा है। काइनिन फल की काशिका संख्या और ऑक्सिन, जिबेरेलिन

कोशिका के आधार में वृद्धि कर उत्पादन को बढ़ाता है। ऑक्सिन के प्रभाव से फल देर से पकते हैं, जिससे आकार में वृद्धि होती है। जी.ए.3 के घोल का फल लगने पर छिड़काव करने से बीज रहित फल प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार नींबू, पपीता, अंगूर में हार्मोन का छिड़काव कर बड़ा बीज रहित फल प्राप्त किया जा सकता है।

5. फलों को पकाने के लिए पादप हार्मोन का उपयोग - फलों को पकना एक निश्चित अवधि के बाद होता है। इस प्रक्रिया में फलों में विभिन्न प्रकार के हार्मोन की मात्रा प्रभावित होती है। फल में एब्सिसिक अम्ल की मात्रा बढ़ने पर इथाइलिन के प्रभाव को उत्प्रेरित करता है, जो फल को पकान में सहायक है। ऑक्सिन एवं जिबेलिन के अधिक मात्रा फल के आकार को बढ़ाती है और फल देर से पकता हे। कुछ किस्मों के फलों को 2,4-डी के 100 से 1000 पी.पी.एम. जलीय घोल में डुबोने पर परिपक्वता की गति बढ़ जाती है। 2,4-डी (20 पी.पी.एम.), 2,4,5-टी हारमोन्स को अनन्नास फलों के साथ उपचारित करने पर फल देर से पकते हैं। ठीक इसी प्रकार का उपचार, सेव और केले के फलों को 2,4-डी (100-1000 पी.पी.एम.) तथा 2,4,5-टी (1000 पी.पी.एम.) देने पर फल शीघ्र पकते हैं।

6. फूल के विरलीकरण में पादप नियन्त्रकों का प्रयोग - किसी खास मौसम में फलतः को कम करने के उद्देश्य से फूलों का विरलीकरण किया जाता है। विरलीकरण का लाभ मुख्य रूप से उस मौसम में फलों का आकार तथा ग्रेड बढ़ाने में मिलता है। साथ ही साथ पौधे की शक्ति पूर्णरूप में क्षीण नहीं हो पाती है, जिसे अगले वर्ष भी उससे समान फल मिल सकें। पौधों पर पादप नियन्त्रकों का छिड़काव तब करना चाहिये जबकि पौधे पर फूल पूर्ण मात्रा में हों। इसके लिए 3-क्लोरो आइसो प्रोपाइल-एन-फिनाइल कार्बामेट (250-300 पी.पी.एम.) तथा एन.पी.ए. लाभकारी सिद्ध हुए हैं।

7. फल तुड़ाई में हार्मोन का उपयोग - मशीन द्वारा तुड़ाई करने के लिए हार्मोन का छिड़काव सहायक सिद्ध होता है, 2,4-डी, 2,3,5-टी, सी.सी.सी. तथा एब्सिसिक अम्ल के सान्द्र घोल का छिड़काव करने से पौधों की पत्तियां झड़ जाती है, जिससे फल तोड़ने में सुविधा होती है।

8. भण्डारण क्षमता को पादप नियन्त्रकों का प्रयोग कर बढ़ाना - फलों को भण्डारित करने पर इनके गुणों में परिवर्तन हो जाता है, जिससे किसान को उचित मूलय नहीं मिलता है और काफी मात्रा नष्ट हो जाती है।

9. खरपतवार नियन्त्रण - खरपतवार नियन्त्रण में हार्मोन का उपयोग बढ़ा है। 2,4-डी, 2,4,5-टी, एम.सी.पी.ए., टी.सी.ए., एन.ए.ए., मैलिक हायड्राजाइड, आदि के सान्द्र विलयन के प्रयोग से खरपतवार नष्ट हो जाते हैं। हार्मोन के प्रयोग से खरपतवार का बन्द होना, भोजन तथा जल के आवागमन को अवरुद्ध करना कोशिका का नष्ट होना और पौधों में विष उत्पन होना।

10. विषाणुओं की रोकथाम - 150 पी.पी.एम. सान्द्रता वाले जी.ए. के घोल के छिड़काव से पर्ण कुंचन विषाणु की रोकचाम होती है। इसी तरह 2,4-डी के 5 पी.पी.एम. घोल के छिड़काव से भी विषाणु प्रकाप में कमी आती है।

पादप वृद्धि नियामकों का प्रयोग करते समय सावधानियां

* पादप वृद्धि नियामकों की उतनी ही मात्रा प्रयोग करनी चाहिए जितनी मात्रा वैज्ञानिकों के द्वारा अनुशंसित की गयी हो। अधिक या कम मात्रा में प्रयोग करने से परिणाम पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।
* उन्ही पादप वृद्धि नियामकों का प्रयोग किया जाना चाहिए, जिन्हें उद्यानिकी फसलों के लिए अनुशसित किया गया है।
* वैज्ञानिकों की संस्तुति के आधार पर फसल की सही अवस्था एवं सही मात्रा में छिड़काव करना चाहिए।
* घोल तकनीकी व्यक्ति की उपस्थिति में बनाना चाहिए।
* घोल संतृप्त पानी में बनाना चाहिये।
* यदि पादप वृद्धि नियामक पानी में घुलनशील न हो तो एल्कोहल या सोडियम हाइड्राक्साइड में घोलकर पानी में मिलाना चाहिए।
* छिड़काव उस समय करना चाहिए जब वायु का प्रवाह तेज न हो।

*****

फल वृक्षों की सघन खेती

ब्रजगोपाल छींपा एवं पी.के. यादव
स्वामी केशवान्नद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर

भारत एक कृषि प्रधान देश है। रोजगार–धन्धों के बढ़ते हुए अवसरों के बावजूद आज भी कृषि देश की समस्त आबादी की 70 प्रतिशत भाग की आजीविका का आधार है। प्रति इकाई क्षेत्रफल अधिकाधिक उत्पादन प्राप्ति कृषि का एक प्रमुख लक्ष्य के रुप में चिन्हित है। फल वृक्षों में सघन रोपण इस दिशा में एक प्रमुख विधि के रुप में देखा जाता है।

सघन रोपण उपयुक्त फल वृक्ष

- काट–छांट सहिष्णु
- कम फैलावदार
- नये बढ़वार पर फलनशील
- ठूंठ–शाख (स्पर) पर फलनशील
- बौना जड़–तन्त्र/प्ररोह शाख उपलब्धता

उपरोक्त विशेषताओं को ध्यान में रख कर फल वृक्षों का चयन करना चाहिए।

सघन रोपण – भेद

- अर्द्ध सघन – 500–1000 वृक्ष प्रति हेक्टेयर
- सघन – 1000–10000 वृक्ष प्रति हेक्टेयर
- अति सघन/घास–रोपण बागवानी – 20000–100000

सघन–रोपण – आवश्यक पहलू

- **मूलवृन्त का चुनाव** – बौने रहने वाले मूलवृन्त सघन बागवानी के लिये उपयुक्त समझे जाते हैं। इस तरह के मूलवृन्त पर किये गये कलिकायन/कलम बंधन से तैयार

पौधे छोटे रहते हैं जो सघन रोपण के लिये वांछित होता है। नींबू वर्गीय फलों (संतरा समेत) के लिये ट्राइफोलिएट ऑरेन्ज, सॉवर ऑरेन्ज, कैरीजो आदि बौने मूलवृन्त है।

- **सांकुर शाख का चुनाव** – सांकुर शाख पौधों के उपरी भाग (तना, टहनियाँ आदि) का निर्माण करते हैं। यदि ये कम बढ़ने वाले हो तो पौधे का आकार छोटा रहता है।

- **कटाई–छंटाई** – सघन रोपण में काट–छांट कर पौधे को बौना रखा जाता है। शुष्क/अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में अमरुद, अनार, बेर में यह तकनीक करगर पाया गया है। अमरुद में नयी प्ररोह की 10 से.मी. शीर्ष हटाना फलत के लिये लाभकर है। बेर में प्रत्येक वर्ष पिछले वर्ष की बढ़वार का एक चौथाई भाग छोड़कर शेष तीन–चौथाई भाग हटा दिया जाता है।

- **संधाई** – अमरुद के पौधे को सघन रोपण प्रणाली में इस तरह साधा जाता है कि हर एक शाख को सूर्य की पर्याप्त रोशनी मिले। पौधे की कतार के दोनों तरफ लगभग 3 फुट ऊँचाई पर लोहे की तार खिंची जाती है । पौधे पर टहनियों को इन तारों के साथ फैलने दिया जाता है।

- **रोपण दूरी** – पौधे को कम दूरी पर रोपण करना सघन रोपण की पहली आवश्यकता है। अमरुद, अनार, बेर आदि में यह दूरी 2 X 2 मी., 2 X 2 मी., 5 X 5 मी. क्रमशः रखी जा सकती है।

- **वृद्धि अवरोधकों का प्रयोग** – सी.सी.सी. 3000 पी पी एम व बी–9, 5000 पी पी एम घोल का छिड़काव फल वृक्षों को बौना रखने में उपयोगी है।

उद्यानिकी विधियाँ – सघन रोपण में प्रत्येक पेड़/प्रत्येक टहनी से उत्पादन प्राप्त की जाती है। अतः खाद–उर्वरक, कीट रोग, सिंचाई आदि प्रबन्धन का विशेष ध्यान रखा जाना है। नींबू वर्गीय फलों में सूक्ष्म पोषक तत्वों का विशेष ख्याल रखा जाता है। इस दृष्टि से जिंक सल्फेट 2–2.5 किग्रा., कॉपर सल्फेट 1–3.5 किग्रा., मैग्नीशियम सल्फेट 0.90 किग्रा., फेरस सल्फेट 0.90 किग्रा., बोरिक एसिड 0.45 किग्रा., मैग्नीज सल्फेट 0.90 किग्रा., यूरिया 4.5 किग्रा., चूना 4 किग्रा. प्रति 454 लीटर पानी में घोल बनाकर बसन्त ऋतु में छिड़काव करना चाहिए।

सघन खेती के घटक

फलवृक्षों का चयन – सघन खेती के लिए फल वृक्षों का चयन सावधानी पूर्वक करना चाहिए प्रायः तीन प्रकार के फल वृक्षों की खेती की जाती है।

1. शाकीय बहुवर्षीय तथा कम अवधी के फल वृक्ष –पपीता, केला, अन्नानास
2. लता तथा बेल रूपी फल वृक्ष – अंगूर
3. काष्ठमय तथा वृक्षावृत फलवृक्ष – आम, अनार, अमररूद, बेर, नींबू वर्गीय, सेव, आड़ू, नाशपती आदि उपरोक्त फल वृक्षों का चयन करते समय निम्न गुणों पर ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है।

– फल वृक्ष कटाई–छंटाई के प्रति सहिष्णु होने चाहिए।
– फल वृक्ष कम फैलाव वाले होने चाहिए।
– नई बढवार पर फलनशील होने चाहिए ताकि उनकी प्रति वर्ष कटाई छंटाई की जा सके।
– ठूठँ–शाक (स्पर) पर फलनशील होने चाहिए।
– फल वृक्षों के बोने जड़ तन्त्र (मूलवृंत) तथा प्ररोह शाख उपलब्ध होने चाहिए।

सघन खेती की तकनीकी :–

सघन खेती फल वृक्षों की पास–पास रोपाई कर की जाती है इसके लिए अत्यन्त आवश्यक है कि वृक्षों के फैलाव पर पूर्ण नियन्त्रण हो। वृक्षों की वृद्धि तथा फैलाव पर नियन्त्रण निम्न प्रकार से किया जा सकता है।

1. **बोने प्ररोह शाक का उपयोग करके** :– आनुवांशीक रूप से बोने प्ररोह शाक, सघन रोपाई की समुचित सम्भावना प्रेषित करते हैं। इनके उपयोग से वर्क्षों का फैलाव प्राकृतिक रूप से कम होता है तथा इनकी अधिक सघन रोपाई की जा सकती है। कुछ फल वृक्षों में बोने प्ररोट सिमित संख्या में उपलब्ध है जो कि निम्न प्रकार है।

आम – आम्रपाली
पपीता – पूसानन्हा
केला – ड्वार्फ केवेन्डीश
सेव – विजीक मेकईन्तोरा, न्युगेट गोल्डन, डेलीरायस
चेंरी – कॉम्पेक्ट लेम्बर्ट, नार्थ स्टार
आड़ू – रेड हेवन

चीकू – पी.के.एम–1, पी.के.एम–3

आम जैसे फल जिसमें परम्परागत रोपाई में 10X10 मी दूरी की आवश्यकता होती है वहीं इसमें आम्रपाली जैसे बोने प्ररोट का प्रयोग कर 2.5X2.5 मी की दूरी पर रोपाई की जा सकती है।

2. **बोने मूलवृंत (जड़ तन्त्र) का उपयोग करके** – इस तकनीकी का उपयोग सर्वप्रथम शीतोष्ण फल वृक्षों के लिए किया गया था जो अब उपोष्ण व उष्ण कटिबन्धी फल वृक्षों में भी किया जा रहा है। इस तकनिकि में बोने मूलतन्त्र का प्रयोग कर फल वृक्ष के फैलाव पर नियन्त्रण किया जाता है।

सघन रोपाई के लिए उपयोग में आने वाले कुछ प्रचलित बोने मूलवृन्त इस प्रकार है–

आम – ओलूर, तोतापरी रेडस्माल

बेर – जीजीफस रोटोन्डी फोलीया

चैरी – कोल्ट, चार्जर, रूबीरा

नींबू वर्गीय – थोमस वीली, सीट्रेन्जक्आर, फेरोनीया, फ्लाईन्ग ड्रेगन

अमरूद – सीजीयम प्यूमीलम, चाईनीज अमरूद, पूसा सृजन

आड़ू – साइवेरीयन 'सी', सेन्ट जूलीयन

बोने मूलवृंत अपनाकर फल वृक्षों के मध्य की दूरी कम करके प्रति है। अधिक संख्या में वृक्ष रोपे जा सकते हैं। बोने मूलवृंत के उपयोग से प्रति वृक्ष उपज में कुछ कमी जरूरी आती है परन्तु प्रति इकाई क्षैत्रफल उपज अधिक प्राप्त होती हे। उदाहरणार्थ अमरूद की सामान्य खेती में वृक्षों के मध्य दूरी सामान्यतः 5 से 6 मी. रखी जाती है। परन्तु बोने मूलवृन्त 'पूसा सृजन' का उपयोग कर यह दूरी 2.5 मी. रख कर प्रति है. अधिक पौधे रोपे जा सती है। इसी प्रकार सेब में सामान्यतः वृक्षों को 5X5 मी. की दूरी पर लगाया जाता है। जबकी बोने मूलवृन्त M–9 का प्रयोग कर इन्हें 2X2 मी. की दूरी पर लगाया जा सकता है।

3. **तने की कटाई–छंटाइ करके** – सघन रोपण में कांट–छांट कर पौधे को बोना रखा जा सकता है। शुष्क/अर्धशुष्क क्षेत्रों में अमरूद, अनार, बेर में यह तकनीकि सफल पायी गई है। अमरूद में नई वृद्धि की शीर्ष 10 सेमी. बढ़वार हटाना फलतः के लिए लाभकर सिद्ध हुआ है। बेर में प्रत्येक वर्ष पिछले वर्ष की बढ़वार का एक चौथाई भाग छोड़कर शेष तीन चौथाई भाग काट देना चाहिए। सामान्यतः वृक्षों में कटाई दो तरह से की जाती है। हेडींग (शीर्षकृतन) इस कटाई में शाखा का शीर्ष काट दिया जाता है जिससे उनकी वृद्धि रूक जाती

है तथा द्वितीयक शाखाओं को फूटान से झाड़ीनुमा वृद्धि करता है। दूसरी विधि थीनींग है जिसमें अधिक सघन वृक्ष में शाखाओं को उनके उद्‌गम से काट कर वृक्ष को छीतरा कर दिया जाता है जिससे उसमें प्रकाश व हवा का प्रवेश आसानी से हो सके।

4. **जड़ों की कटाई छंटाई द्वारा** – यह तकनीक प्राचीन काल से पौधों को बोना (बोनसाई) रखने में प्रयोग हो रही हे। इस तकनीक द्वारा वृक्ष की वृद्धि को सभी दिशाओं में समानरूप से नियत्रिंत किया जा सकता है। जड़ों की कटाई से वृक्ष जल्दी फलन में आते है यद्यपी कई वृक्षों में इसके विपरित प्रभाव, पानी के कम अवशोषण व कम प्रकाश संश्लेषण के रूप में देखे गये हैं।

5. **सधाई** – सघन रोपाई में फल वृक्षों की बढ़वार को नियन्त्रीत करने व उपज के प्रबन्धन में सधाई उपयुक्त सिद्ध हुई है। वृक्ष की वृद्धि के शुरूआती समय से सही सधाई करके वृक्ष की आकृती, आकार व उपज का प्रबन्धन किया जा सकता है। सघन खेती में उपयोगी सधाई के प्रकार निम्न है।

(अ) **टाटूरा ट्रेलीस** :– इस विधि की खोज 'सिंचाई अनुसंधान संस्थान, आस्ट्रेलीया ने की थी। इस विधि में 'V' आकार के वृक्षों की पंक्तियाँ उत्तर से दक्षिण की ओर लगाते हैं। वृक्ष पर मात्र दो प्रमुख शाखाएं पूर्व व पश्चिम में रखी जाती है। इस विधि द्वारा आड़ू के प्रति है. 1800 वृक्ष लगाये जा सकते है जबकी परम्परागत विधि में मात्र 300 वृक्ष प्रति है. लगाये जा सकते हैं।

(ब) **पिरामिड विधि** :– इस विधि में केन्द्र तने की मुख्य रूप से बढ़वार कराई जाती है। इस विधि में सेव के 3000 वृक्ष प्रति है. लगाये जा सकते हैं इस विधि में फलन वृक्ष के बाहरी परीधी में अधिक लगते है।

(स) **कोर्डोन विधि** :– इस विधि का उपयेाग आड़ू व आलू बुखारा में किया जाता है। इस विधि में 4x1 मी. की दूरी पर रोके जाते हैं तथा मुख्य तने से चार द्वितीयक शाखाएं दो दिशाओं में बढाई जाती है जिन्हें कोर्डोन कहा जाता है। इस विधि में प्रति है. 2500 वृक्ष आसानी से रोपे जा सकते हैं।

(द) **हेज रोपण विधि** :– यह विधि सघन खेती में उपयोग की जाने वाली सबसे प्रचलित विधि है। इस विधि में वृक्षों के मध्य 50 सेमी से 100 सेमी की तथा पंक्ति के मध्य 3 मी. की दूरी रखी जाती है। इस विधि में वृक्षों को 2 मी. ऊंचाई पर बंधे तारों पर साधा जाता है। तथा निरन्तर कटाई छंटाई से उनकी वृद्धि नियन्त्रीत की जाती है। यह विधि अंगूर के

लिये अति उपयोगी है।

6. **रसायनों द्वारा वृद्धि नियन्त्रण** – वर्तमान समय में कई रसायनों का प्रयोग वृद्धि नियन्त्रण के रूप में किया जा रहा है जिनमें AMO-1618, पेक्लोब्युट्राजोल, CCC, B9 (फास्फोन डी तथा क्लोरामेक्आट प्रमुख है। पेक्लोब्युट्राज़ोल का उपयोग व्यवसायीक रूप से आम, अमरूद आदि फलों में कटाई के बाद किया जाता है जिससे वृक्ष जल्दी फलन में आ जाता है तथा वृक्ष की बढ़वारा भी सीमित होती है।

सघन खेती के लाभ

1. सघन खेती द्वारा सुर्य के प्रकाश का प्रति इकाई अधिकतम उपयोग कर अधिक फलत (उपज) प्राप्त की जा सकती है।
2. सघन खेती में उन्नत तकनिकें जैसे सुक्ष्म सिंचाई, यान्त्रिक प्रबन्धन का अधिकतम सदुपयोग किया जा सकता है।
3. सघन खेती में निवेश घटक जैव उर्वरक, जल कवकनाशी, कीट नाशक व शाकनाशी का समुचित उपयोग किया जा सकता है।
4. सघन खेती में कटाई–छंटाई व अन्य अन्तःशस्य क्रियाओं में प्रति इकाई श्रम की लागत कम आती है। .
5. फलों की उपज व गुणवत्ता में वृद्धि होती है।
6. कीट व व्याधि द्वारा होने वाली हानि की प्रतिशतता में कमी आती है।

सघन खेती की सीमाएँ

1. सघन खेती में अधिक लागत आती है साथ ही उधान प्रबन्धन के लिए वैज्ञानिक व तकनिकी दक्षता की आवश्यकता होती है।
2. सघनता अधिक होने के कारण उधान में अन्तःशस्य क्रियाएं करना कठिन कार्य सिद्ध होता है।
3. सघन रोपित उधान में कई बार कीट व व्याधि का प्रकोप परम्परागत रोपाई की तुलना में अधिक होता है।
4. छाया प्रभाव के कारण कुछ फलों में उपज व गुणवत्ता में हीनता आ जाती है।

*****

बेर उत्पादन प्रौद्योगिकी

बीरबल, वी.एस. राठौड़, सीमा भारद्वाज, एन.एस. नाथावत एवं एन.डी. यादव
के.शु.क्षे.अ.सं, प्रादेशिक अनुसंधान स्थात्र, बीकानेर (राज.)

जलवायु एवं भूमि

बेर *विभिन्न प्रकार की जलवायु तथा भूमि में आसानी से उगाया जा सकता है।* मूसला जड होने के कारण अन्य फलो की तुलना में इसको बहुत ही कम पानी की आवश्यता होती है। फल देने के बाद उसके पौधे गर्मियों में सुषुप्तावस्था में चले जाते हैं और पत्ते झड़ जाते हैं। इसलिए पौधे अधिक गर्मी और प्रतिकुल परिस्थितियों को सहन करने की क्षमता रखते है। बेर समपूर्ण राजस्थान में उगाया जा सकता है। गोला, सेव मूण्डिय पश्चिम राजस्थान, उमरान अलवर, भरतपुर, गंगानगर, गोला, माहरवाली व कैथली जयपुर हेतु उपयुक्त है।

इसकी खेती क्षारीय तथा लवणीय भूमि में भी कर सकते है किन्तु बलुई दोमट भूमि जिसमे जीवांश की मात्रा अधिक हो, इसकी खेती के लिए उपयुक्त रहती है।

उन्नत किस्में तैयार करना :–

इसके मूलदृन्त बीज द्वारा नर्सरी मे ही तैयार किये जाते है। 25x15 सेमी की पोलीथीन की थैलियों में 1:1:1 के अनुपात में चिकनी मिट्टी, बलुई मिट्टी ओर गोबर की खाद का मिश्रण भर देते है। इसके बाद देशी बेर से निकाले गये बीजों की बुवाई इन तैयार थैलियों मे मार्च के प्रथम या द्वितीय सप्ताह में कर देते है फिर पानी दे देते हैं। बुवाई से पूर्व बीजों को कैप्टन 2 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से बीजोपचार कर बोना चाहिए। 7 से 10 दिनों मे बीजों का अंकुरण हो जाता है और लगभग 3 से 4 महीनो में देशी पोधे कालिकायन टी बडिंग अथवा आई बडिंग की विधि द्वारा लगा देते हैं। इस प्रकार 30 से 40 दिन बाद पौधा खेत में स्थानान्तरण के योग्य हो जाता है । उमरान व गोला किस्म के लिए जीजीफस रोइन्टीफोलिया (देशी बोरडी) मूलवृन्त अति उपयोगी पाया गया है।

पौधे लगाने की विधि

खेत में पौधो की रोपाई का सबसे अच्छा समय वर्षा ऋतु (जुलाई–अगस्त) होता है जिन क्षेत्रों में सिंचाई के साधन उपलब्ध वहां पर पौधो की रोपाई बसन्त माह फरवरी–मार्च में भी की जा सकती है। वर्गाकार विधि से बेर लगाने लिए वर्षा ऋतु से पहले 6x6 मीटर की दूरी पर

2x2x2 फुट आकार के गडढे तैयार कर लिये जाते हैं। रोपाई के एक माह पूर्व इन गडढों में 2 टोकरी सडी हुई मीगनी या गोबर की खाद तथा 50 ग्राम मिथाईल पैराथियान (5%) चूर्ण को मिटटी में मिलाकर हल्की सिंचाई कर देते है। इन गडढो मे वर्षा शुरू होते ही पौधशाला में बडिंग द्वारा तैयार किये पौधो को लगा देते हैं। पौधा पूर्वरूप से स्थापित होने तक समय–समय पर सिंचाई करते रहना चाहिए।

सिंचाई : बेर के पौधों में कम पानी की आवश्यकता होती है साधारणतौर पर नये प्ररोह के निकले समय फूल आते समय और उनकी वृद्धि के समय पर्याप्त मात्रा मे सिचाई देनी चाहिए।

यूरिया की आधी मात्रा ओर सुपर फास्फेट एवं म्यूरेट ऑफ पोटाश की पूरी मात्रा जुलाई एवं बाकी बची यूरिया की आधी मात्रा नवम्बर माह में देनी चाहिए। उमरान किस्म के 10 वर्ष के पौधे में 500 ग्राम नत्रजन, 500 ग्राम फास्फॉरस डालने से पेडों का अधिकतम उत्पादन 60 किग्रा प्राप्त हुआ।

अन्तराशस्य : प्रारम्भ के तीन चार वर्षो की अवधि में पेडों की बढ़वार पूर्ण न होने से कतारो के बीच काफी भूमि खाली पडी रहती है तथा पेड़ों से फल उपज भी नाम मात्र की होती है। इस अवधि में कतारों के बीच पड़ी खाली भूमि में कम पानी चाहने जल्दी पककर तैयार होने एवं उथली जड़ो वाली दलहनी फसलें जैसे मूंग, मोठ, चॅवला, ग्वार आदि को उगाकर अतिरिक्त आय ली जा सकती है। ये फसले मृदा कटाव को रोकती है तथा भमि की उर्वरता, भौतिक दशा एवं जल धारण क्षमता को भी बढ़ाती है। सिंचाई की सुविधा उपलब्ध होने पर कुछ सब्जियाँ जैसे कददू वर्गीय फल वर्गीय, गोभी वर्गीय एवं दलहनी फसलें उगायी जा सकती है। जब पौधे पूर्ण रूप से फलन में आ जाये एवं उनसे व्यवसायिक स्तर का फलन मिलना प्रारम्भ हो जाये तब अन्तः फसलें लेना बन्द कर देना चाहिए।

कटाई–छंटाई : प्रारम्भिक दो या तीन साल तक पौधे को सशक्त रूप और सही आकार देने के लिए पौधे के मुख्य तने पर 4 से 5 प्राथमिक शाखाएं हर दिशा में रहने देते है। पहली शाखा के जमीन की सतह से एक फूट तक आने देते है और प्रत्येक शाखा के बीच में करीब आधा से एक फूट की दूरी रखता है। बेर में प्रति वर्ष कृन्तन करना चाहिए, क्योंकि इसकी पत्तियों के कक्ष में जो नये प्ररोह निकलते है उन्हीं पर फूल एवं फल लगते हैं। मई में गर्मी प्रारम्भ होने पर पौधे सुषुप्तावस्था में प्रवेश कर जाते हैं तब इनकी कटाई छंटाई कर देनी चाहए, जिससे

ज्यादा से ज्यादा नये प्ररोह निकलें और उन पर अधिक फल लगे। कृन्तन द्वितीय शाखा तक करें। कृन्तन करते समय अनचाही रोग्रस्त सूखी टहनियों और आपस में रगड़ खाती हुई टहनियों को हटा देना चाहिए। बेर में 6 द्वितीयक शाखाये (सेकेन्ड्रीज) रखकर गत वर्ष की शाखाओं को काटे।

विपरित परिस्थितियों में पौधों का बचाव : पौधों को ठण्डी, बर्फीली हवा, तेज गर्म लू आधियाँ आदि से बचाने के लिए बाग के चारों और वायुरोधी पौधे लगाने चाहिए। पौधो को जंगली जानवरों से बचाने के लिए खेत के चारों और मजबूत कंटीली बाड़ अथवा बोरड़ी के बीज पौधे लगा देने चाहिए। सर्दियों में पाले से बचाने के लिए बेर के बाग में रात को धुंआ करे। शाम की हल्की सिंचाई एवं 0.1 प्रतिशत गंधक के अम्ल का घोल कर पर्णीय छिड़काव करें।

फल गिरने की समस्या : फलों को गिरने से रोकने हेतु 2–4 डी सोडियम साल्ट (बागवानी ग्रेड) या 2–4–5 टी का 20 पी.पी.एम. की दर से फल के मटर के दाने के आकार की अवस्था पर 15 दिन के अन्तराल पर दो छिड़काव करें। इसके स्थान पर प्लेनाफिक्स रसायन 0.3 मिली. प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव किया जा सकता है।

फलों की तुड़ाई एवं उपज : बेर के फल व फूल आने के 150–175 दिन के बाद परिपक्व हो जाते है उत्तरी भारत में बेर की तोड़ाई जनवरी से मार्च तक की जाती है जबकि दक्षिणी भारत में अक्टूबर नवम्बर माह में ही फल पक्कर तैयार हो जाते है। वर्ष आधारित बाग के पांच वर्ष के पेड़ से औसतन 40–50 किग्रा फल प्राप्त होते है जबकि सिंचित पौधो से दो गुना अधिक उपज ली जा सकती है।

*****

आंवला की बागवानी

आर. एस. सिंह एवं गरिमा पाल

केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीछवाल, बीकानेर–334 006

फलों का उपयोग हमारे दैनिक जीवन में विशेष महत्व रखता है। भोजन में सन्तुलित आहार के लिए फलों की मांग को पूरा करने के लिए यह आवश्यक है कि फलों का उत्पादन व क्षेत्रफल बढ़ाया जाये। राजस्थान में उपयोगिता एवं उत्पादन के दृष्टिकोण से आंवला बहुत ही महत्वपूर्ण फल है। देश में लगभग 60000 हैक्टेयर तथा राजस्थान में करीब 1838 हैक्टेयर क्षेत्र में आंवला की बागवानी की जा रही है तथा प्रतिवर्ष नये पौध लगने के कारण क्षेत्र में आशतीत वृद्धि हुई है। आंवला की उत्पत्ति दक्षिण पूर्वी एशिया तथा मध्य भारत में हुई है। आंवलें में विटामिन 'सी' की सर्वाधिक मात्रा पाई जाती है जो फल सरंक्षण एवं उत्पाद के बाद भी समाप्त नहीं होती है इसमें खनिज लवण, प्रोटीन तथा कार्बोहाइड्रेट भी अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। पैक्टिन अधिक होने के कारण जैली बनाने तथा फलों से उच्च कोटि के परिरक्षित उत्पाद जैसे मुरब्बा, अचार, कैण्डी, सीरप तथा जैम इत्यादि बनाया जाता है। इसके अतिरिक्त यह स्याही, शेम्पू, तेल तथा हेयर डाई बनाने के लिए प्रयोग होता है तथा आयुर्वेदिक औषधि बनाने में भी इसका सर्वाधिक उपयोग होता है जिसमें च्यवनप्राश एवं त्रिफला मुख्य है।

जलवायु एवं भूमि – यह एक उपोष्ण जलवायु का पौधा है तथा इसको समुद्र तल से 1800 मीटर की ऊँचाई तक सफलतापूर्ण उगाया जा सकता है। इसके पौधे अधिक सहिष्णु होने के कारण विभिन्न प्रकार की मिट्टी में उगाये जा सकते हैं। इसको हल्की अम्लीय तथा 9.0 पी एच वाली भूमि में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। सोडियमयुक्त मृदा में पौधे लगाने से पहले उसको जिप्सम या पाईराइट से उपचारित करना चाहिए। 9.0 पी एच मान वाली मृदा से गड्ढे में 40 किग्रा. गोबर की खाद 15 किग्रा. बालू 9 किग्रा. जिप्सम तथा 7 किग्रा. पाइराइट का मिश्रण भरने के 25 दिन बाद पौधे लगाने चाहिए। आंवले के पौधों को पाला प्रभावित करता है। अतः इसकी खेती पाला पड़ने वाले क्षेत्र में सफल नही होगी।

उन्नत किस्में – आंवला की अनेक किस्में विकसित की गई है जिनमें निम्नलिखित प्रमुख किस्में हैं। बनारसी – यह एक अगेती प्रचलित किस्म है जिसके फल बड़े अण्डाकार आकार सफेद हरी धारियां व रेशेवाले होते हैं फलों का उत्पादन कुछ कम होता है इसके फल मुरब्बा बनाने के लिए उपयुक्त है। इसमें अपरिपक्व फलों के गिरने तथा कम भण्डारण क्षमता की समस्या पाई गई है।

चकैया – यह एक देर से पकने वाली तथा अधिक फल उपज देने वाली किस्म है। फल मध्यम चपटे आकार का तथा रेशा अधिक होता है इसकी पैदावार अधिक होती है। मुरब्बा बनाने के लिए उपयुक्त किस्म है।

कृष्णा – यह अच्छी उपज देने वाली प्रजाति है जिसके फल मध्यम आकार के चपटे एवं चिकनी सतह वाले हल्की लालिमा लिए हुए होते हैं फल लगभग 40 ग्राम का होता है।

नरेन्द्र आंवला 6 – यह एक अच्छी उपज देने वाली किस्म है जिसके फल का वजन 40 से 45 ग्राम के लगभग होता है। मुरब्बा तथा कैण्डी के लिए अच्छी किस्म है।

नरेन्द्र आंवला 7 – इसके वृक्ष ओजस्वी तथा सीधे बढ़ने वाले होते हैं वजन 45 से 50 ग्राम फल वजन लम्बे गोल आकार और चिकनी त्वचा वाले होते हैं। गूदा कम रेशायुक्त लिए हुए हरा और मुलायम होता है। यह किस्म आन्तरिक उत्तक क्षय से प्रभावित नहीं होती है इसलिए उत्तम किस्म के तौर पर इसकी खेती अधिक क्षेत्र में की जाती है। अत्यधिक फल उपज के कारण शाखाओ के टूटने की समस्या देखी गई है।

कंचन – इसके फल गोल चिकनी सतह वाले हल्का पीलापन लिये हुए होते है यह किस्म अधिक फल देने वाली तथा इसमें मादा पुष्पों की संख्या अधिक होती है। गूदा रेशायुक्त तथा मध्य में पकने वाली किस्म है।

लक्ष्मी 52 – यह एक नई चयनित अधिक उपज देने वाली किस्म है जो केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ से विकसित की गई है।

गोमा ऐश्वर्य– यह किस्म अर्धशुष्क बारानी क्षेत्रो के लिए उपयुक्त है तथा नरेन्द्र आंवला–7 से चयनित क्लोन जो केन्द्रीय बागवानी परीक्षण केन्द्र, गोधरा से विकसित की गई है। इन किस्मो के अतिरिक्त बलवंत, आनन्द–1 तथा आनन्द–2 किस्में भी प्रचलित है।

प्रवर्धन – आंवला में पर परागण होता है । बीज का प्रयोग केवल मूलवृन्त तैयार करने के लिए ही करना चाहिए। बीज को बोने से पहले 500 पी पी एम के जिब्रेलिक अम्ल के घोल में 24 घण्टे रखने पर शत्–प्रतिशत् तक अंकुरण होता है। जब मूलवृन्त वाले पौधे एक वर्ष के हो जाते है उनके ऊपर जून–जुलाई में विनियर ग्राफटिंग द्वारा प्रसारण करना चाहिए. लेकिन जुलाई –अगस्त में कलिकायन (पैच बडिंग) करने पर बहुत अच्छे परिणाम आते हैं। तथा प्रवर्धन की सामान्य विधि है। शुष्क क्षेत्रों में स्वस्थानिक बाग स्थापना एक सफल विधि है।

रोपाई – इसके पौधे लगाने के लिए जून–जुलाई माह में 1 X 1 X 1 मीटर के गड्ढे खोद लेना चाहिए। पौधे से पौधे की दूरी 8 से 10 मीटर रखते हैं क्योंकि यह किस्म व जलवायु पर निर्भर

करती है। गड्ढे के अन्दर 25 किग्रा. गोबर की सडी हुई खाद, एक किग्रा. सुपर फास्फेट तथा मिट्टी मिश्रण भरकर उसमें पानी लगा देना चाहिए ताकि गडढा अच्छी तरह बैठ जाये। रोपाई के लिए अगस्त व सितम्बर का माह उपयुक्त रहता है पौधे एक वर्ष पुराने ही प्रयोग करने चाहिए। रोपाई के पश्चात हल्की सिंचाई अवश्य करनी चाहिए। अच्छी पौध वृद्धि के लिए समय–समय पर निराई गुडाई करनी चाहिए।

खाद एवं उर्वरक – आंवला को प्रथम वर्ष 10 किग्रा. गोबर की सडी हुई खाद,75– 100 ग्राम यूरिया, 50 ग्राम सुपर फास्फेट तथा 50 ग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश देते है तथा हर वर्ष इनकी मात्रा इतनी बढाते रहना चाहिए तथा 10 वर्ष व इससे अधिक पुराने पौधों को 100 किग्रा गोबर की सड़ी हुई खाद, 750 ग्राम यूरिया तथा 500 ग्राम सुपर फास्फेट व पोटाश की मात्रा देनी चाहिए। सितम्बर के माह में 0.4 प्रतिशत बोरेक्स का छिडकाव करने से उत्तक क्षय रोग की रोकथाम की जा सकती है।

सिंचाई – पौधो की सिंचाई मृदा नमी, प्रकार व मौसम के अनुसार करनी चाहिए। सामान्यतः पौधों को 10–15 दिन के अन्तराल से सिंचाई करना चाहिए। बूंद–बूंद सिंचाई प्रणाली से पानी की बचत के साथ अच्छी पौध वृद्धि एवं फल उपज प्राप्त की जा सकती है।

परागण तथा फलन – इसके अन्दर फरवरी–मार्च में फूल आते हैं तथा नर और मादा दोनों तरह के फूल सामान्यतः सुबह खिलते है पराग कोषों का स्फुटन सायं 4–6 के बीच होता है। मादा फूल खिलने के तीन दिन बाद परागकण परागण के लिए ठीक रहते हैं तथा अगले 18 घण्टे के लिए वह उपयुक्त रहते है। बनारसी तथा फ्रांसिस फलों के लगने का कारण कम मादा पुष्प के होने के साथ ही साथ परागकण की कमी भी होती है। आवला के अन्दर निषेचन की क्रिया होने के तुरन्त बाद जैसे ही फल बनता है यह सुषुप्तावस्था में चला जाता है इस अवस्था में फलों का विकास रुक जाता है। यह सुषुप्तावस्था पूरे उत्तर भारत में देखी जाती है। सुषुप्तावस्था जुलाई के अन्त में या वर्षा होने के पश्चात समाप्त हो जाती है तब फलों का विकास होता है। आंवला पर हुए शोध से पता चला है कि अत्यधिक ऑक्सिन की मात्रा होने के कारण सुषुप्तावस्था पाई जाती है क्योंकि सुषुप्तावस्था में जिब्रेलिन, साइटोकाइनिन एवं अवरोधक की मात्रा कम पाई जाती है जैसे ही ऑक्सिन की मात्रा कम होती है तो सुषुप्तावस्था भी समाप्त हो जाती है और फलो का विकास शुरु हो जाता है जो बढ़कर नवम्बर–दिसम्बर में परिपक्व हो जाते हैं ।

पौध संरक्षण –

आंवलारस्ट – अगस्त माह से दिसम्बर माह तक इस बीमारी का प्रकोप देखा जा सकता है।

इसके अन्दर पत्तियों और फलों पर गोल व अण्डाकार धब्बे बनते हैं। राजस्थान के चौमूं क्षेत्र में इसका काफी प्रकोप देखा गया है। इसकी रोकथाम के लिए 0.3 प्रतिशत डायथेन एम–45 या डायथेन जेड–78 का छिड़काव जुलाई के बाद 2–3 बार करना चाहिए लेकिन क्लोरोथेलोनील (कवच) 0.2 प्रतिशत का छिड़काव करने पर बहुत अच्छे परिणाम आते हैं ।

नेक्रोसिस (उत्तक क्षय) – इस विकार द्वारा फ्रासिस किस्म में 80 प्रतिशत तक फल खराब हो जाते है। तथा यह बीमारी अक्टूबर–नवम्बर में अधिक होती है। यह एक दैहिक विकार है जो भूमि में बोरॉन की कमी के कारण प्रायः होती है इसकी रोकथाम के लिए बोरॉन का 0.4 से 0. 6 प्रतिशत घोल का छिड़काव अप्रेल, जुलाई तथा सितम्बर माह में करने चाहिए।

फलसड़न – यह रोग अक्टूबर–नवम्बर में फल के अन्दर लगता है । फल के ऊपर भूरे रंग के धब्बे बन जाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए सोडियम क्लोराइड के घोल का प्रयोग करना चाहिए।

शूट गाल मेकर– पौधों की टहनियों के अग्र भाग में गांठे बन जाती है जो कि कीड़े लगने के कारण होता है। ग्रसित भाग को काट कर नष्ट कर दें अन्यथा एसीफेट 1.2 मिली प्रति लीटर पानी के हिसाब से छिड़काव करके नियंत्रित किया जा सकता है।

दीमक– शुष्क क्षेत्र में पौधों को दीमक से काफी नुकसान पहुंचता है इसकी रोकथाम के लिए पौधों को थाले में मिथाइल पैराथियॉन चूर्ण अथवा सिंचाई के समय क्लोरपाइरीफास का प्रयोग करें।

तना छेदक – यह शाखाओं में छेद करके उनको अन्दर से खोखला कर देते है इसके छिद्र को किसी तार से साफ करके उसमें मिट्टी का तेल भर कर चिकनी मिट्टी से बन्द कर देना चाहिए।

लीफ केटर पीलर – यह कीट बरसात के माह में में देखा जा सकता है इसके रोकथाम के लिए 0.2 प्रतिशत डॉइमैक्रान कीटनाशी का छिड़काव करना चाहिए।

फलों की तुड़ाई एवं पैदावार – आंवला का बीजू पौधा 10 वर्ष में फल देना प्रारम्भ करता है लेकिन वानस्पतिक प्रसारण से तैयार हुआ पौधा 4–5 वर्ष में फल देना प्रारम्भ कर देता है। इसके फल नवम्बर–दिसम्बर में परिपक्व हो जाते हैं आंवले के 10–12 वर्ष पुराने पेड़ से 150 से 200 किग्रा. के लगभग तक फल प्राप्त होते हैं। इस प्रकार आंवला से 1.2 क्विंटल प्रति वृक्ष तथा 10–12 टन फल उपज प्रति हेक्टेयर प्राप्त की जा सकती है । विपणन हेतु फलों की श्रेणीवार एवं कटे फटे रोग ग्रसित फलों की छटाई कर अच्छी पैकिंग कर बाजार में भेजनी चाहिए।

*****

खजूर की खेती

बीरबल, वी.एस. राठौड़, सीमा भारद्वाज, एन.एस. नाथावत एवं एन.डी. यादव
के.शु.क्षे.अ.सं., प्रादेशिक अनुसंधान स्थात्र, बीकानेर (राज.)

खजूर का फल अति प्राचीन है । इसकी उत्पति फारस की खाड़ी में बताई जाती है। अरब लोगों के भोजन में आज भी यह प्रमुख है। पौष्टिक तत्वो से भरपूर फल में जल 30 प्रतिशत शर्करा, 60–65 प्रतिशत, रेशे 2.5 प्रतिशत, प्रोटीन 2 प्रतिशत, तथा वसा पोटेशियम, कैल्शियम, तॉबा मैगनिशियम, क्लोरीन, गंधक, फॉस्फोरस तत्व (प्रत्येक 2 प्रतिशत कमा) पाये जाते है इसके अतिरिक्त विटामिन 'ए', विटामीन 'बी' (राइबोक्लेकिन, थाइमिन) भी उपलब्ध होते हैं। कार्बोहाइड्रेट प्रचुरता के कारण 1 किलोग्राम ताजा फलों से 3150 कैलोरी उर्जा प्राप्त होती है। अतः दूध के साथ खजूर एक सम्पूर्ण आहार माना जाता है। खजूर का सेवन स्वास्थ्य के लिए बहुत ही लाभदायक है। भारत में प्राचीनकाल से इसकी खेती होने के बावजूद गुजरात क्षेत्र के कच्छ क्षेत्र को छोड़कर उसका क्षेत्रफल नगण्य है।

जलवायु

एक अरबी कहावत प्रचलित है कि खजूर का 'सिर आग में तथा पैर पानी में होना' इसकी खेती के लिए आवश्यक है। खजूर को लम्बी गर्म शुष्क ग्रीष्म ऋतु तथा मध्यम सर्द ऋतु और सर्द फल पकते समय (जुलाई–अगस्त) वर्षा रहित जलवायु की आवश्यकता होती है। फूल आने व फल पकने के लिए उपयुक्त तापमान क्रमशः 25 व 35 डिग्री सैल्सियस होना चाहिए। फूल व फल जमते समय वर्षा नही आनी चाहिए, यदि अधिक वर्षा होती है तो फूलों एव फलो के सड़ने का डर रहता है परन्तु पौधों को समुचित सिंचाई की आवश्यकता होती है। कुल 2800–3150 डिग्री दैनिक उष्मा इकाई (आधार 10 डिग्री सै.) की फलों की पूर्ण परिपक्वता तक आवश्यकता होती है। उष्मा इकाई योग परागण के आरम्भ (फरवरी–मार्च) से फलों की पूर्ण परिपक्वता तक होनी चाहिए।

भूमि

खजूर की खेती लवणीय मृदाओं मे भी जिनका पी.एच. मान 8–8.5 तक हो, मे सफलतापूर्वक की जा सकती है। इसके लिए गहरी अच्छे जल निकास वाली बलुई मिट्टी बहुत उपयुक्त है। भूमि में कम से कम दो मीटर गहराई तक कोई सख्त परत नहीं होनी चाहिए।

खजूर की जड़ों के भीतर हवा की कोठरियाँ होती है जिनके कारण जड़े पानी में डूबे रहने पर भी अपना कार्य सुचारू रूप से कर सकती है।

किस्म/प्रजातियाँ

पश्चिमी राजस्थान की जलवायु एवं मिट्टी में मुख्य रूप से हलांवी, शामरान, खलास, बरही, गलेटनूर, खदरावी, उमशोक, खूनीजी आदि उपयुक्त किस्में है। डोका (खलल) अवस्था में फल कड़े व पक्के तथा विशिष्ट रंग वाले, डॅग (रतब) अवस्था में फल मुलायम होने आरम्भ होते हैं तथा पिण्ड (तमर) अवस्था में फल पूर्णतया मुलायम हो जाते है। खजूर की हलावी, खदावी, शामरान बरही, मेडजूल, जहिदी, सेबी एवं खुनिजी इत्यादि किस्में अच्छी पाई गई है। तजा फलों को खाने के लिए हलावी, बरही, छुआरा बनाने के लिए मेड जूल, खदरावी, शमरान तथा पिण्ड खजूर बनाने के लिए हलावी, खदराकी, जाहवी शामरान उपयुक्त किस्में हैं।

प्रवर्धन

खजूर एकलिंगी वृक्ष होने के कारण इसके नर एवं मादा पुष्पक्रम अलग–अलग पौधों पर लगते हैं। यदि सर्कस (अन्तःभूस्तारी) मादा पौधों से प्राप्त किए गए है तो वे मादा ही निकलेंगे। वैसे खजूर का प्रर्वधन बीज से भी किया जा सकता है। बीज द्वारा पौधे तैयार करने में बहुत कम समय लगता है लेकिन पौधे की किस्म भी सही नहीं आती है। नर व मादा पेड़ की पहचान फूल आने तक नहीं होती है। अतः सर्कस द्वारा ही प्रर्वधन किया जाना लाभदायक रहता है। खजूर के सर्कस पूर्णवृद्धि प्राप्त पौधे के तने के निचले हिस्से के पास जमीन से निकलते हैं। इन सर्कस को रोपाई के काम में लिया जा सकता है। तीन से पाँच वर्ष पूराने सर्कस के मुख्य पेड़ से पृथक करके रोपाई करते समय इन सर्कस का वजन कम से कम 8–10 किलो होना चाहिए।

पौधे लगाने का समय एवं विधि

खजूर के पौधे वर्ष में दो बार लगाये जा सकते हैं। वर्षा ऋतु में जूलाई–अगस्त एवं बसन्त में फरवरी–मार्च में लगाना उत्तम माना गया है। 6x6 मीटर (278 पौधे हैं) की दूरी पर 1x1x1 मीटर आकार के गडढे खोद कर प्रति गडढा 20 किलो गोबर की खाद, 200 ग्राम सुपर फॉस्फेट व 50 ग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश तथा 20–25 ग्राम क्लोरोपायरीफॉस अथवा इण्डोसलफान और 20–25 ग्राम केप्टान प्रत्येक गडढे में अच्छी तरह मिलावें। सकर्स को गडढों में लगाने से पूर्व 0.2 प्रतिशत कार्बोडाजियम रसायन के घोल से उपचारित करना चाहिए। इसके अतिरिक्त

सर्कस की जड़ों को इण्डोल ब्युटायरिक अम्ल (आई.बी.ए.) 1000 पी.पी.एम घोल से 2–5 मिनट तक उपचारित करके गड्डो मे लगाने से जडों का विकास अच्छा होता है। गडढों को भरने के बाद सर्कस को भूमि से 15 सेमी ऊपर रखते हुए रोपाई करके सिंचाई करते है। नर पौधों के अभाव में मादा में निषेचन नहीं होने से फल नही लग सकते, अतः नर एवं मादा पौधों का अनुपात 1:10 का रखना चाहिए। नर पौधों की संख्या अधिक होने पर उन्हें हटाना होता है।

खाद एवं उर्वरक

अच्छी पैदावार और उत्तम फल प्राप्त करने के लिए प्रति पौधा 30–40 किलोग्राम सड़ी हुई गोबर की खाद पेड़ को प्रतिवर्ष आवश्यकता होती है। उर्वरकों की मात्रा पौधे की आयु के अनुसार एवं भूमि के उपजाउपन पर निर्भर करता है। सामान्यतः उर्वरकों के रूप में 600 ग्राम से 1.25 किलो तक यूरिया, 600 ग्रम सुपर फॉस्फेट तथा 100 ग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश प्रतिवर्ष प्रति पेड़ देना चाहिए। गोबर की खाद सितम्बर–अक्टूबर में तथा अन्य उर्वरक फरवरी–मार्च में फूल एवं फल लगने के पूर्व बराबर मात्रा में देनी चाहिए।

सिंचाई

नये लगाये गये अन्तः भूस्तारियों की सिंचाई एक सप्ताह तक प्रतिदिन करनी चाहिए। अगले दो महीनों में सिंचाई सप्ताह में दो बार तथा फिर गर्मी में 7 दिन में तथा सर्दी में 10–15 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करें। खजूर में सिंचाई का विशेष महत्व है। फल बनते समय एवं बढवार के समय सिंचाई पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। फल बनने की शुरूआत से फल पकने की अवस्था तक समुचित नमी भूमि में होनी आवश्यक है। सिंचाई जल की भूमि में सरंक्षण क्षमता बढ़ाने के लिए स्थानीय रूप से प्राप्त घास एवं फूस की मोटी परत भूमि की सतह पर तने के चारों और बिछाना चाहिए। बूँद–बूँद सिंचाई विधि का उपयोग काफी लाभकारी सिद्ध हो सकता हैं एवं इस विधि से जल बचाकर जल का समुचित उपयोग किया जा सकता है।

अन्तराशस्य

बाग लगाने के शुरूआती दौर में (4–5 वर्षों तक) सब्जियाँ ग्वार, मटर, चवला, मोठ एवं सभी प्रकार की अल्पावधि वाली फसले ली जा सकती है। फल वृक्षों के बड़े होने पर इनके बीच में कन्द एवं बल्ब वाली फसलें ली जा सकती है।

परागण एवं फलन

खजूर एक लिंगी वृक्ष होने के कारण इसमें नर और मादा पेड़ अलग–अलग होते हैं।

इसलिए 10 मादा वृक्षों के साथ एक नर वृक्ष रखना आवश्यक है। कृत्रीम परागण हेतु मादा पुष्पक्रमों जो तुरन्त (फरवरी–मार्च में) खिले हो को नर पुष्पक्रमों या परागकणों को रूई के फोहों की सहायता से लेकर प्रातःकाल खिले मादा फुलों पर 2–3 दिन तक फिराना चाहिए या नर पुष्पक्रमों को काटकर मादा पुष्पक्रमों पर उल्टा सुतली से बांध कर (लटकाकर) भी परागण करवाया जा सकता है।

छंटाई एवं गुणवत्ता सुधार

फल बनने पर फलों वाले गुच्छों को (यदि 10–12 से अधिक हो तो) कम कर देना चाहिए। इससे फल जल्दी पकते हैं व उनका आकार भी बढ़ जाता है। एक गुच्छे में 5 से 7 पत्तियों की आवश्यकता होती है। प्रत्येक गुच्छे में केन्द्र की एक तिहाई लड़ियों को निकाल देने से गुच्छों के फलों का समुचित विकास होता है और फल उच्च गुणवता वाले बनते हैं तथा अच्छे पकते हैं। फलों के हरे से पीले–लाल पड़ने की अवस्था में गुच्छों पर 1000 पी.पी.एम. इथीफॉन/ईथरल रसायन का छिड़काव करने से फलों के आकार एवं वजन में वृद्धि होती है।

*****

नींबू वर्गीय फलों की उत्पादन तकनीक

पी. के. यादव

एस.के.आर.ए.यू. बीकानेर

नींबू फलों का एक बृहत्तम वर्ग है जिसके अन्तर्गत मुख्य रुप से मैन्डरिन, संतरा, कागजी नींबू व चकोतरा आदि की गिनती की जाती हे। देश में फलों के कुल क्षेत्र के लगभग 9 प्रतिशत हिस्से पर नींबू वर्गीय फलों की खेती की जाती है । नींबूवर्गीय फल देश के कुल उत्पादन में लगभग 8 प्रतिशत अंशदान करते हैं।

कृषि विधा का तीव्र विकास, पोषण–सचेत उपभोक्ता तथा फलों के प्राकृतिक विशिष्ट गंध व स्वाद के कारण नींबूवर्गीय फलों का क्षेत्रफल बढ़ रहा है तथा भविष्य में और बढ़ोतरी की संभावना है। अपने देश में नगापुर के संतरा की आम उपभोक्ता के बीच अपनी अलग पहचान है।

उत्पत्ति एवं वितरण – नींबू की उत्पत्ति दक्षिण एशिया खासकर भारत–चीन और दोनों देश के बीच का स्थान माना जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका, स्पेन, भारत, जापान, मैक्सिको, ब्राजील, आस्ट्रेलिया, इजरायल आदि प्रमुख नींबू उत्पादक देश हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका वृहत्तम स्तरीय नींबू उत्पादक देश है विश्वस्तर पर संतरा, मैन्डरिन, नींबू व चकोतरा आदि प्रमुख नींबू वर्गीय फल है।

अपने देश में आम और केला के बाद नींबू वर्गीय फलों को क्षेत्रफल के आधार पर तृतीय स्थान पर उगाया जाता है। इसके अन्तर्गत 3.69 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल आता है जिससे 29.7 लाख टन उत्पादन होता है। इसकी खेती क्रमशः महाराष्ट्र, आन्ध्रप्रदेश और पंजाब में सबसे अधिक की जाती है। अपने देश में संतरे की खेती नागपुर(महाराष्ट्र), खासी की पहाड़ियों (मेघालय), दार्जिलिंग और कुर्ग (कर्नाटक) में मुख्य रुप से की जाती है। माल्टा की खेती महाराष्ट्र, तमिलनाडु, आन्ध्रप्रदेश, हरियाणा, पंजाब, उत्तरप्रदेश व राजस्थान में की जाती है। नींबू की बागवानी बिहार, महाराष्ट्र, आन्ध्रप्रदेश, पश्चिम बंगाल, उत्तरप्रदेश एवं पंजाब में ही जाती है। चकोतरा को पंजाब व हरियाणा में तथा पुमेलों को पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, असम आदि राज्यों में व्यावसायिक स्तर पर उगाया जाता है।

नींबू वर्गीय फल	विश्व में नींबू उत्पादन में प्रतिशत अंश
संतरा	71
मैन्डरिन	13
नींबू (कागजी और देशी)	10
चकोतरा	6

पोषक महत्व – फल प्राय: खाने के बाद ताजे फलों के रुप में खाये जाते हैं माल्टा एवं खट्टी नारंगी से मार्मलेड बनाया जाता है। संतरा, मौसमी, नींबू, ग्रेप फ्रुट के रस से स्कवाश बनाया जाता है। नींबू वर्गीय फलों में विटामिन 'सी' पर्याप्त मात्रा मे पाई जाती है। फलों का पोषक मान नीचे देखा जा सकता है ।

नींबूवर्गीय फलों का पोषण संघटन

पोषण संघटक	माल्टा	संतरा	नींबू
कार्बोहाइड्रेट (ग्रामं)	7.8	11	10.9
प्रोटीन (ग्रामं)	0.7	0.8	1.5
विटामिन 'ए' (IU)	–	11.04	20
विटामिन. 'सी'(मि.ग्रामं)	54	50	63
थायमीन (मि.ग्रामं)	–	–	0.02
राइबोफ्लेविन (मि.ग्रामं)	–	–	0.03
कैल्शियम (ग्रामं)	10	30	90
मैगनीशियम (ग्रामं)	30	20	20
लोहा (ग्रामं)	1.0	0.32	0.3

जलवायु – नींबू उपोषण जलवायु का पौधा है तथा यह पाला सहित क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। इसके पौधों को अतिशीत की आवश्यकता नहीं होती पर शीत ऋतु के प्रभाव से पौधे की बढ़वार का रुकना पु पण के लिए लाभकर होता है। शीतकालीन निष्क्रियता

के परिणामस्वरुप बसन्त मे पौधे पर खूब फूल आते हैं । नींबू की विभिन्न जातियों की तापक्रम के प्रति सहनशीलता अलग–अलग होती है। मैन्डरिन कम तापक्रम सहन कर सकता है। जबकि कागजी नींबू कम सहनशील होता है। फूल आने के समय तेज हवा व अधिक गर्मी फलत पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। वातावरण की आर्द्रता फलों की दैहिक गुणवत्ता को प्रभावित करती है। यदि वातावरण में आर्द्रता कम हो तो फलों के रंग अच्छे होते हैं। अधिक आर्द्रता होने से मौसम्बी या माल्टा के फल अधिक रसयुक्त होते हैं परन्तु छिलका पतला होता है। अधिक आर्द्र उष्ण क्षेत्रों में पके फलों के छिलके में पीला रंग नहीं होता है। 100 से.मी. वार्षिक वर्षा नींबू की खेती के लिये बहुत ही उपयुक्त है। अर्द्ध शुष्क उपोष्ण क्षेत्रों में जहाँ 50 से.मी. से कम वर्षा होती है वहीं नींबू की खेती के लिये सिंचाई की सुविधा आवश्यक है।

भूमि – नींबूवर्गीय फलों को अनेक प्रकार की मिट्टी में उगाया जाता है। परन्तु पौधे के उचित विकास के लिये गहरी, भुरभुरी, उपजाऊ मिट्टी अच्छी होती है। सख्त परत वाली भूमियों में जिसमें कैल्सियम कार्बोनेट के संस्तर पाये जाते हैं पौधों में अल्पवृद्धि देखी जाती है तथा अंततः पूरा पौधा सूख जाता है। मृदा की 5.5–7.5 पी एच मान पौधे के लिये उपयुक्त होता है। नींबू वर्गीय फल लवणता के प्रति संवेदी होते हैं तथा लवणता सहन नहीं करते हैं। दोमट मिट्टी नींबू वर्गीय फलों के लिये बहुत ही उपयोगी होती है। नींबू की जड़ों में महीन जड़ केशा का अभाव होता है। अतः मृदा की समृद्धि के लिये जीवांश का प्रयोग करना चाहिए। ऐसा करने से मिट्टी सघन नहीं होती हैं जो पौधों के उचित विकास के लिये आवश्यक होता है।

विभिन्न प्रकार के प्रमुख नींबूवर्गीय फल

माल्टा – यह बहुभ्रूणीय होता है। इसकी उत्पत्ति स्थान चीन है। फलों को आकार गोलाकार–अण्डाकार, रंग पीला, छिलका संख्त तथा स्वाद मीठा होता है।

संतरा – यह प्रजाति भी बहुभ्रूणीय होती है। यह चीन का मूलज है। फल मध्यम आकार के होते हैं। फलों की आकृति गोल होती है। छिलका ढीला होता है ताकि फलों की फांकें आसानी से अलग हो जाती है। फल का रंग लालिमा लिये पीला होता है।

कागजी नींबू – इसका फल हरापन लिये हुए पीला होता है। छिलका पतला होता है। मध्यवर्ती भाग परिपक्वता पर ठोस होता है। गूंदे का रंग हरा होता है। फलों का रस बहुत अम्लीय होता है। यह बहुभ्रूणीय होता है।

चकोतरा – यह भी बहुभ्रूणीय होता है । फल का आकार बड़ा व गोलाकार होता है। पत्तियाँ बड़ी व पंखाकार अनुपर्ण युक्त होती है। फल व गूदे का रंग पीला होता है। फल का मध्य भाग परिपक्वता पर खुल जाता है।

नींबू– यह क्षीण बहुभ्रूणीय होता है। फल का छिलका कागजी नींबू के छिलके की अपेक्षा कुछ मोटा होता है। छिलके का रंग हरा–पीला होता है तथा मध्यवर्ती भाग ठोस होता है। इसका रस म दुपेय व मि ठान उद्योग में सुवास प्रदान करने के लिये प्रयोग किया जाता है।

मीठा नींबू – यह बहुत अधिक बहुभ्रूणीय होता है। इसके पेड़ मध्यम बड़े व फैलावदार प्रकृति के होते हैं। फल कुछ अण्डाकार होता हैं तथा छिलका फांकों से दृढ़ता से जुड़ा रहता है। फल चिकना व हरापन लिये पीला होता है। मीठा नींबू को महाराष्ट्र के विदर्भ क्षेत्रों में संतरा के लिये उपयोग मूलव न्त के लिये प्रयोग किया जाता है।

खट्टी नारंगी – खट्टी नारंगी बहुत अधिक बहुभ्रूणीय प्रकृति की होती है। यह प्रजाति ठंड से अप्रभावित रहती हे। पेड़ मध्यम आकार के होते हैं। पत्तियाँ गहरी हरी तथा बहुत अधिक सुगन्धित होती है। इसके फूल भी बहुत अधिक सुगन्धित होते हैं। इस प्रजाति के फूलों से तेल निकाला जाता है पौधे का प्रयोग जड़तन्त्र के रुप में किया जाता है।

प्रमुख नींबू वर्गीय फलों के सामान्य नाम व किस्मों का विवरण निम्न प्रकार है –

हिन्दी नाम	अंग्रेजी नाम	वानस्पतिक नाम	प्रमुख किस्में
माल्टा	Sweet orange	Citrus sinensis	माल्टा, वाशिंगटन नेवेल, मौसम्बी, माल्टा ब्ल्ड रेड, जाफा, वेलेन्सिया, पाइनएप्पल, साथगुडी, शौमोटी,
संतरा	Mandarin	Citrus reticulata	डोंकी, खासी ओरेन्ज, किंग अबोहर, किन्नो, लाडू, नागपुर संतरा, विल्किन किन्नो 5–5, कमला, कुर्ग
कागजी नींबू	Lime	Citrus aurantifolia	कागजीलाइम–1, विक्रम, पीकेएम–1, सीडलेस, प्रमाणिलिनी, सांई शर्बती
बड़ा नींबू	Lemon	Citrus limon	पंत लेमन–1, गलगर्ल, कागजीकलन, बारामासी, नेपाली ओब्लोंग, यूरेका, लिस्बन, इटालियन, लखनऊ सीडलैस, मेयरलेमन, माल्टा लेमन।

वानस्पतिक प्रसारण – वानस्पतिक प्रसारण के लिये उत्तरी भारत जट्टी–खट्टी तथा C.Kami को मूलवन्त के रुप में प्रयोग किया जाता है। रंगपुर लाइम नागपुर संतरा के लिये महाराष्ट्र व मध्यप्रदेश में मूलव न्त के लिये प्रयोग किया जाता है।

कलिकायन – उत्तरी भारत में मूलवृत "T" कलिकायन या शील्ड कलिकायन मार्च–अप्रेल या अगस्त–सितम्बर में करते हैं। कलिकायन करने के लिये अच्छी तरह फूली हुई प्रस्फूटन के पूर्व अवस्था की कली एक वर्ष पुरानी शाखा से लेना चाहिए। कलिकायन जमीन से 2. से.मी. की ऊँचाई पर करना चाहिए। यह विधि मौसमी, माल्टा, नागपुरी संतरा, किन्नो आदि के प्रसारण में प्रयोग में लाई जाती है।

गूटी बांधना – गूटी बांधने का उपयुक्त समय फरवरी–मार्च होता हैं। इस विधि से लेमन, लाइम और मीठे नींबू का प्रसारण किया जा सकता है।

कलम – कलम लगाने के लिये परिपक्व शाखाओं का चयन किया जाता है कलम की लम्बाई 20 से.मी. की रखते हैं। इस विधि द्वारा मीठा नींबू, लेमन, लाइम आदि का प्रसारण किया जाता है।

पादप रोपण– वानस्पतिक विधि द्वारा तैयार किये गये पौधे लगभग 1 वर्ष तक पौधशाला में रखने के बाद रोपण के लिये तैयार हो जाते हैं। नींबू वर्गीय बगीचा लगाने के लिये खेत में रोपण के एक माह पूर्व 75X75X75 से.मी. आकार के गड्ढे खोद लिये जाते हैं तथा गड्ढे में 40 किलोग्राम सड़ी हुई गोबर की खाद, 1 किलोग्राम सुपर फॉस्फेट पौधे लगाने के एक माह पूर्व मिट्टी में मिला दिये जाते हैं। गड्ढे खोदने से पूर्व खेत को समतल करके तैयार कर लिया जाता है। माल्टा, संतरा 6–8 मी., नींबू व कागजी नींबू 4.5–6 मीटर तथा पुमेलों व ग्रेपफ्रूट 6–7.5 मीटर की दूरी पर लगाये जाते हैं। पौधे रोपण का उपयुक्त समय मार्च–अप्रेल तथा जुलाई–अगस्त हैं। नींबू वर्गीय बगीचों को हवा के गर्म व ठण्डे झोंकों से बचाने के लिये शहतूत, जामुन, शीशम आदि वायुवृत्ति उत्तर–पश्चिम दिशा में लगाने चाहिए।

सिंचाई – जलवायु व मिट्टी के अनुसार पौधों को 7–15 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करते रहना चाहिए। सिंचाई के पानी को पौधे के तने के पास नहीं आने देना चाहिए। पौधे बड़े होने के बाद ऋतु में पानी की आवश्यकता नहीं होती है। सर्दी के मौसम में सिंचाई 10–15 दिन के अन्तराल पर की जाती है तथा गर्मी के दिनों में 5–7 दिन के अन्तराल पर सिंचाई की जाती है।

खाद एवं उर्वरक – नींबू वर्गीय पौधों में जस्ता, लोहा, मैंगनीज, बोरॉन आदि तत्वों की कमी देखी जाती है। इन तत्वों के प्रभाव से पत्तियों में हरिमाहीनता तथा तना छोटा रह जाना, फूल

व फल कम लगना, फलों का फटना आदि समस्याएँ दृष्टिगोचर होती हैं। इसलिये बगीचे में खाद व उर्वरकों के साथ सूक्ष्म तत्व भी देने चाहिए। पौधों को प्रति 1 वर्ष उम्र के हिसाब से 10 किलोग्राम गोबर की खाद, 120 ग्राम नत्रजन, 60 ग्राम सुपर फॉस्फेट तथा 80 ग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश दिया जाता है। इस मात्रा को प्रत्येक वर्ष 5 वर्ष तक उसी अनुपात में बढ़ाया जाता है । उसके बाद खाद व उर्वरक की मात्रा स्थिर कर दी जाती है जिसे आगे के वर्षो में दिया जाता है। पौधों पर जस्ता, लोहा व बोरॉन की कमी के लक्षण दिखाई देने पर 0.4–0.6 प्रतिशत जिंक व फेरस सल्फेट तथा 0.1 प्रतिशत बोरेक्स के घोल का छिड़काव किया जाता है।

अन्तःसस्यन– जब तक पौधों पर फल नहीं लगते हैं, उस समय तक पौधों के बीज की जगह को फसल उगाने के लिये उपयोग किया जा सकता है। फसल उस स्थान की जलवायु व भूमि के अनुरुप होनी चाहिए तथा शीघ्र बढ़ने वाली व कम समय मे परिपक्व होने वाली होनी चाहिए। नींबू वर्गीय बगीचे में चना, मूंग, मोठ, चंवला, ग्वार, पपीता तथा सब्जियां उगाई जा सकती है।

काट–छांट – भूमि में 60 से.मी. की ऊँचाई तक तने पर किसी भी शाखा को नहीं बढ़ने दिया जाता है। उसके बाद 4–5 शाखाओं को जो चारों तरफ फैली हुई हो, बढ़ने दिया जाता है। जलीय प्ररोह जो पतली व तेज बढ़ने वाली शाखा होती है को उसकी लम्बाई का 2/3 हिस्सा छोड़ कर 1/3 हिस्सा काटकर अलग कर दिया जाता है। पौधों से सूखी व रोगग्रस्त शाखाओं को भी समय–समय पर काट दिया जाता है। काट–छांट करने के बाद पौधों पर ताम्रयुक्त फफूंदनाशक जैसे –कॉपर सल्फेट 0.2 प्रतिशत के घोल का छिड़काव करना चाहिए।

फलन – नींबू वर्गीय फलों में फूल मुख्य रुप से बसन्त ऋतु (फरवरी–मार्च) में आते हैं। परन्तु नींबू की खट्टी प्रजातियों में फूल लगभग पूरे वर्ष आते रहते हैं। दक्षिण भारत में जहाँ कि शीत ऋतु अतिशीतत नहीं होती है, वहाँ नींबू वर्गीय फलों में वर्ष में तीन बार फूल आते हैं । अम्बे बहार, मृग बहार तथा हस्त बहार। अम्बे बहार के फूल फरवरी–मार्च में तथा फल नवम्बर–दिसम्बर तक पककर तैयार हो जाते हैं। मृग बहार के फूल जुलाई –अगस्त में तथा फल मार्च–मई में तैयार हो जाते हैं। हस्त बहार के फूल सितम्बर–दिसम्बर में आते हैं जिससे फल जुलाई –अगस्त में तैयार होते हैं। फूल मिश्रित कली पर आते हैं।

फलों का गिरना – नींबू वर्गीय फलों के फल झड़ने/गिरने की समस्या पाई गई है। प्रायः फल निम्न चार अवस्थाओं में गिरते हैं –

फूल झड़ना – इस अवस्था पर विकृत, अपोक्षित व क्षमता से अधिक लगे फूल झड़ जाते हैं।

1. **फल लगने की अवस्था पर** – जब फूल में निशेचन की क्रिया नहीं होती है तब वे गिर जाते हैं।

2. **जून झड़न** – फल बनने के बाद मई–जून में कुछ फल अधिक तापक्रम, कम आर्द्रता, गर्म हवा तथा भूमि में कम नमी आदि के कारण गिर जाते हैं।

3. **परिपक्वता पूर्व फल झड़ना** – इस तरह के फल झड़ने में विकसित होने के पहले फल का झड़ना शामिल है।

फल गिरने की रोकथाम – फलों को गिरने से रोकने में पादप नियन्त्रक का विशेष महत्व है। स्वीट ऑरेन्ज के पौधों पर 2, 4–क, 8 पी पी एम घोल का छिड़काव करना फल झड़न रोकने में लाभदायक पाया गया है। संतरा के फलों पर 2,4,5–T 10 पी पी एम का छिड़काव करने पर फल बहुत कम संख्या में गिरते हैं।

फलों का फटना – फलों के फटने की समस्या मुख्य रुप से लेमन तथा माल्टा में पाई जाती है। संतरा व ग्रेपफ्रूट के फलों में यह समस्या नहीं होती है। फल प्रायः उस समय फटते हैं जब शुष्क मौसम में अचानक वातावरण में आर्द्रता हो जाती है। गर्मी में बरसात होने से फलों के फटने की समस्या बढ़ जाती है। भूमि में नमी की कमी के बाद यकायक सिंचाई की जाने से भी फल झड़ते हैं। इस समस्या की रोकथाम के लिये आवश्यकतानुसार हल्की सिंचाई करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त पौधों पर 10 पी पी एम जिब्रेरेलिक अम्ल का छिड़काव करने से फलों के फटने की समस्या काफी कम की जा सकती है।

कणिकायन – इस दैहिक विकृति के कारण फलों की फांकों की रस कोशा सूख जाती है। सूर्य की तरफ वाले पौधों में यह समस्या अधिक पाई जाती है। माल्टा तथा संतरा के फल इस समस्या से अधिक प्रभावित होते हैं। जट्टी–खट्टी मूलवृन्त वाले पौधों में इस समस्या को अधिक देखा गया है। इससे प्रभावित,पौधों के फलों मे रस, कुल घुलनशील पदार्थ तथा अम्लता घट जाती है तथा छिलका, पेक्टिन व लिग्निन की मात्रा बढ़ जाती है। यह समस्या फूल व फल लगने के समय अधिक तापक्रम या अधिक आर्द्रता के कारण होती है। इसका नियन्त्रण निम्न प्रकार किया जा सकता है।

1. पौधों को 15 दिन के अन्तर से पर्याप्त सिंचाई करनी चाहिए।

2. जिंक सल्फेट, कॉपर सल्फेट व पोटेशियम सल्फेट प्रत्येक 0.25 प्रतिशत तथा बोरिक एसिड 25 पी पी एम का छिड़काव सितम्बर के प्रथम सप्ताह से प्रत्येक माह

फल तोड़ने के समय तक करना चाहिए।

3. प्लानोफिक्स 300 पी पी एम या इथ्रेल 50 पी पी एम भी विकृति को कम करने में सहायक है।

नींबू वर्गीय पौधों के रोग

1.कैंकर रोग – यह रोग जीवाणु द्वारा होता है, जिसे *जैंथोमोनास सिट्राई* कहते हैं। रोग के लक्षण पत्तियों पर हल्के पीले धब्बे के रुप में दिखाई देते हैं जो बाद में भूरे और खुरदरे हो जाते हैं। बाद में रोग टहनियों, कांटे और फलों पर भी आ जाता हैं । नर्सरी व बड़े पौधों में भी यह रोग पाया जाता है।

रोकथाम– इस रोग की रोकथाम के लिए नया बाग लगाते समय पौधे रोग रहित व स्वस्थ होने चाहिए व पौधे लगाने से पूर्व पौधें को ताम्रयुक्त कवकनाशी से (0.3 प्रतिशत) उपचारित करें। बाग में रोग के प्रकोप को कम करने के लिए कटाई–छंटाई के बाद विशेषकर जून से अक्टूबर तक स्ट्रेप्टोसाइक्लीन 250 मिलीग्राम का प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर 15 दिन के अंतराल से छिड़काव करना चाहिए।

2.गोंदाति रोग – इस रोग से प्रभावित तनों पर भूमि के पास से, टहनियों के रोग ग्रसित भाग से गोंद जैसा पदार्थ रिसता है व छाल पर बूंदों के रुप में इकट्ठा होने लगता है। छाल सूखने लगती है, फट जाती है व भीतरी भाग भूरे रंग का हो जाता है। अंत में छाल सड़ जाती है, रोग ग्रसित पौधों की पत्तियाँ गिरने लगती है व पौधों की जड़ें भी सड़ने लगती है जिससे रोग ग्रसित पेड़ मरने की स्थिति में पहुँच जाते हैं।

रोकथाम– प्रतिरोधी मूलवृन्त जैसे जट्टी–खट्टी नारंगी, कलीयोपेट्रा संतरा, ट्राइफोलिएट ओरेंज व रंगपुर लाइम का ही चयन करना चाहिए। संचाई का पानी तने के सीधे सम्पर्क में नहीं आने देना चाहिए। रोग ग्रसित पौधों की छाल तेजधार वाले चाकू से उतारकर बोर्डो लेप करना चाहिए व बाद में ताम्रयुक्त कवकनाशी के 0.3 प्रतिशत का या बोर्डो मिश्रण (2 :2 : 50) का चार–पांच छिडकाव 15 दिन के अन्तराल से करना चाहिए। यदि रोग का प्रभाव पौधों की जड़ों में हो तो, प्रभावित जड़ों को काटकर बाविस्टीन या केप्टान का (0.1 प्रतिशत) घोल बनाकर डालना चाहिए।

3.डाईबैक – इसे एन्थ्रेक्नोज रोग भी कहते हैं। इस रोग से पत्तियों पर भूरे बैंगनी धब्बे बनते हैं, शाखाएँ ऊपर से नीचे की ओर सूखने लगती है व भूरे रंग की हो जाती है। पत्तियाँ सूखकर गिर जाती है। फल छोटे आकार व सिकुड़े हुए लगते हैं व गल जाते हैं। यह रोग कार्यिकीय असंतुलन व कवक दोनों द्वारा फैलता है यह रोग किन्नों व माल्टा को ज्यादा प्रभावित करता है।

रोकथाम– सबसे पहले रोग प्रभावित शाखाओ की कांट छांट करनी चाहिए, कटी हुई शाखाओं पर ताम्रयुक्त कवकनाशी (ब्ल्यू कॉपर) का लेप लगाना चाहिए। पेड़ों पर ताम्रयुक्त कवकनाशी या मेन्काजेब 0.2 प्रतिशत (2 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी) का घोल बनाकर 15 दिन से छिड़काव (वर्षा ऋतु में) करने आवश्यक है।

4.विषाणु रोग – नींबू वर्गीय फल विषाणु रोगों से अधिक प्रभावित होते हैं। जिनमें ट्रिस्टेजा एक्जोकारटिस ,सोरोसिस , सिट्रस रिंग स्पोट , व सिट्रस मौजेक रोग नींबू वर्गीय पौधों पर लगते हैं।

ट्रिस्टेजा रोग – इस रोग से प्रभावित पेड़ों की पत्तियाँ पीली होकर झड़ जाती है। पत्तियों के गिरने पर शाखाएँ ऊपर की तरफ से मरना शुरु हो जाती हैं– प्रभावित पेड़ों की जड़ों की बढवार रुक जाती है तथा इन पौधों पर पुष्पकलिकाएँ अधिक संख्या में आती हैं व फल बनने के बाद सूख जाते हैं। यह रोग दो प्रकार के लक्षण प्रकट करता है:

(i) पेड़ो का धीरे–धीरे सूखना, (ii) पेड़ों का अचानक व तेजी से सूखना। इनके साथ–साथ ये विषाणु रोग विशिष्ट लक्षण प्रदर्शित करता है। जैसे (अ) कलम बांधने वाले स्थान के नीचे छाल में मधुमक्खी के छत्ते की तरह गड्ढे बनना। इन गड्ढों के अन्दर की लकड़ी के उत्तक कांट के समान उठे रहते है। (ब). पत्तियों की नसों का पीला हो जाना– इस रोग का प्रसार प्रभावित मूलवृंत, संकुर डाली या रोग वाहक कीटों खाहू की कई जातियाँ, द्वारा होता है। इन माहू में टॉक्सोप्टेरा सिट्रीसिड्स प्रमुख है। अमरबेल भी रोग फैलाने का कारण हो सकती है।

रोकथाम– रोग ग्रसित पौधों को पहचान कर उखाड़ देना चाहिए। नये पौधे तैयार करने के लिए रोग प्रतिरोधी मूलवृंतों जैसे क्लियोपेट्रा संतरा, जट्टी–खट्टी, रंगपुर लाइम, ट्राइफोलिएट ओरेंज का प्रयोग करना चाहिए। रोग वाहक एफिड (माहू) को कीटनाशक दवाओं के लगातार उपयोग से नियन्त्रित किया जा सकता है।

5.हरितन रोग : – यह रोग माइकोप्लाज्मा द्वारा होता है। पत्तियों पर जस्ते की कमी की तरह के लक्षण उत्पन्न होते हैं। पीला भाग एक ओर मध्य शिरा तथा तीन ओर पार्श्व शिराओं से घिरा रहता है। पत्तियों का छोटी व मोटी हो जाना, पेड़ का सीधा ऊपर की तरफ बढ़ना तथा पत्तियों का गिर जाना अन्य लक्षण है। किसी भी मौसम में फूल व फल आ जाती हैं तथा शाखाएं ऊपर की तरफ से सूखने लगती है। फल छोटे, अविकसित व कच्चे ही गिर जाते हैं। एक – एक करके सभी शाखाएँ सूखने लगती है। हरितन रोग संक्रमित सांकुर डाली से और रोगवाहक कीट सिट्रस सिल्ला से फैलाया जाता है। रोगी पौधों से भोजन ग्रहण करने के बाद माइक्रोप्लाज्मा, कीट के शरीर में 8–12 दिन तक वृद्धि करता है और एक सिल्ला कीट 76 दिनों तक संक्रामक बना रह सकता है।

रोकथाम– प्रभावित नर्सरी से ही पौध लेनी चाहिए। रोगी पौधों को नष्ट कर देना चाहिए। ट्रैटासाइक्लीन दवा के छिड़काव या तने में टीके से रोग की रोकथाम की जा सकती है।

उपज– नींबू वर्गीय फलों में फूल आने के नौ माह बाद फल पककर तैयार हो जाते हैं। परन्तु नींबू व कागजी नींबू के फल–फूल लगने के छः माह बाद तोड़ने के लिये तैयार हो जाते हैं। पौधों से 3 वर्ष बाद फल मिलने प्रारम्भ हो जाते हैं तथा पांच–छः वर्ष के पौधे पूर्ण फल देना प्रारम्भ कर देते है। संतरा के पेड़ से 1000–1400, स्वीट औरेंज व लेमन से 500, पुमेलो तथा ग्रेपफ्रूट से 250 तथा लाइम से 800–1200 फल प्रति पेड़ प्राप्त होते हैं ।

भण्डारण – नींबू वर्गीय फलों में माल्टा का भण्डारण सबसे अधिक समय के लिये किया जा सकता है। इसका भण्डारण 4^0 सें. तापमान तथा 85–90 प्रतिशत आर्द्रता पर 4 माह तक के लिये तथा माल्टा और संतरा 2 माह तक भण्डारित किये जा सकते हैं। देशी नींबू व कागजी नींबू को 8^0 सें. तापमान व 85–90 प्रतिशत आर्द्रता पर 2 माह तक भण्डारित किया जा सकता है।

*****

बेल की उन्नत बागवानी

आर. एस. सिंह एवं गरिमा पाल

केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीछवाल, बीकानेर–334 006

बेल एक प्राचीन फल वृक्ष है जिसका प्रत्येक भाग किसी न किसी रूप में उपयोग होता है। इसे बील पत्र अथवा श्रीफल के नाम से भी जाना जाता है। अनेक पौराणिक ग्रन्थों में बेल वृक्ष का वर्णन मिलता है। शुष्क क्षेत्रीय बागवानी विकास के लिए बेल एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बहुपयोगी फल है। वातावरण के प्रति सहिष्णु होने के कारण इसकी बागवानी देश के अर्ध–शुष्क एवं शुष्क क्षेत्रों में सम्भव है। फलों में प्रचुर पौष्टिकता व भण्डारण क्षमता, परिरक्षित उत्पाद एवं तथा अत्यधिक फल उत्पादन देने के कारण इसका शुष्क बागवानी में विशेष स्थान है। इसके फल में अनेक पौष्टिक तत्व, खनिज एवं विटामिन्स प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं (तालिका–1) जबकि जड़, छाल, पत्ती, फूल, फल, गोंद इत्यादि का विभिन्न औषधियों के रूप में प्रयोग किया जाता है। बेल के फलों को ताजा खाने के अलावा इन से पेय पदार्थ, सीरप, जैम, मुरब्बा, चूर्ण आदि बनाये जाते हैं। यह दशमूल का मुख्य घटक है। इसकी पत्तियों एवं फलों के सेवन से पेट के विकारों जैसे पेचिश, ऑव व दस्त रोग आदि से छुटकारा मिलता है। इसका पका फल पाचक होता है जिसके सेवन से कब्ज में राहत मिलती है एवं पाचन क्रिया ठीक रहती है। मधुमेह, पीलिया, बवासीर, आंदि अनेक रोगों के उपचार में भी इसका प्रयोग होता है। घरेलू स्तर पर इसका सेवन प्राचीन काल से किया जाता है। यही नहीं गर्मी में बेलगिरी के शर्बत के सेवन से ताजगी व शीतलता रहती है तथा लू से भी बचाव होता है। बीजों से प्राप्त तेल विभिन्न प्रकार की आयुर्वेदिक औषधियों में प्रयुक्त होता है। इसकी लकड़ी से घरेलू फर्नीचर, औजार व कृषि यंत्र बनाये जाते हैं। बेल वृक्ष की धार्मिक महत्व होने के कारण इसका उपयोग धार्मिक अनुष्ठानों में पूजा अर्चना के लिये तथा महाशिवरात्रि पर इसका विशेष महत्व होता है।

बेल का वानस्पतिक नाम 'एगिल मार्मेलास' है जो रूटेसी कुल का एक बहुशाखीय पौधा है। इसका वृक्ष मध्यम ऊंचाई (5–10 मीटर) का होता है तथा पत्तियां संयुक्त त्रिपर्णी होती हैं। तना व टहनियों पर कांटे पाये जाते हैं जो पौधे को शुष्क एवं अर्ध शुष्क क्षेत्रीय जलवायु के प्रति सहिष्णुता प्रदान करते हैं। बेल एक उपोष्ण कटिबन्धीय, जलवायु का पौधा है जिसमें पतझड़ के पश्चात ग्रीष्म ऋतु में नयी पत्तियां एवं फूल आते हैं। बेल के पौधे प्रायः सम्पूर्ण भारत में पाये

जाते हैं परन्तु उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, आंध्रप्रदेश, गुजरात, राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, पश्चिम बंगाल, अण्डमान एवं निकोबार द्वीप में पाये जाते हैं। शुष्क एवं अर्ध शुष्क जलवायु, क्षारीय एवं लवणीय मृदा के प्रति सहिष्णु होने के कारण देश के कम वर्षा वाले क्षेत्रों तथा विशेषतौर से राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, तमिलनाडु, गुजरात आदि प्रदेशों में बेल की व्यवसायिक खेती की अपार सम्भावनायें हैं। परन्तु आवश्यकता इस बात की है कि क्षेत्र के मुताबिक चयनित किस्मों को अधिक क्षेत्र में लगाया जाये। इसके परिरक्षित पेय आदि के निर्यात की भी सम्भावनायें हैं।

तालिका 1 : बेल के फल में पाये जाने वाले विभिन्न पोषक तत्व

पोषक तत्व	प्रति 100 ग्राम फल से
नमी	61.5 ग्राम
कार्बोहाइड्रेट्स	31.8 ग्राम
प्रोटीन	1.8 ग्राम
रेशा	2.9 ग्राम
खनिज लवण	1.7 ग्राम
वसा	0.3 ग्राम
अम्लता	0.31 – 0.40 प्रतिशत
कैल्शियम	85 मि.ग्रा.
लौह	0.6 मि.ग्रा.
म्यूसिलेज	12.7 – 19.5 प्रतिशत
कुल घुलनशील पदार्थ (टीएसएस)	31 – 35.50 ब्रिक्स
राइबोफ्लेबिन	1.1 मि.ग्रा.
कैरोटिन	55 मि.ग्रा.
थायमिन	0.13 मि.ग्रा.
नियासिन	1.1 मि.ग्रा.
विटामिन–सी	8 – 18 मि.ग्रा.

जलवायु एव भूमि :– यद्यपि बेल के पौधे उष्ण एवं उपोष्ण जलवायु के अनुपजाऊ, बंजर, परती, ऊसर, रेतीली भूमि में सरलतापूर्वक लगाये जा सकते हैं परन्तु अच्छी पैदावार एवं गुणवत्ता के लिये अच्छे जल निकासवाली बलुई–दोमट पी.एच.मान 5–8 के बीच वाली मिट्टी उपयुक्त होती है। लवणता व क्षारीयता के प्रति सहिष्णु होने के कारण बेल की बागवानी समस्याग्रस्त मृदा क्षेत्रों में भी सम्भव है परन्तु ऐसे क्षेत्रो में पौध रोपण से पूर्व गड्ढों में उचित भूमि सुधारक जैसे जिप्सम, पायराईट आदि का प्रयोग करना आवश्यक है। बेल के नवरोपित पौधे पर पाले का प्रभाव देखा गया है अतः पालाग्रस्त क्षेत्रों में इसकी बागवानी पर्याप्त बाग प्रबन्ध के उपरान्त ही करनी चाहिए।

उन्नत किस्में :–देश के विभिन्न भागों में बेल की जैव विविधता उपलब्ध है। बेल की दो प्रजातियॉं देखी गई हैं एक, वे जिसके फल आकार में छोटे, स्वाद में कड़ुवे व अधिसंख्य बीज व गोंद (लिसलिसा पदार्थ) वाले होते हैं जिनका प्रयोग अधिकांशतः आयुर्वेदिक औषधि बनाने में होता है तथा दूसरे, वे जिसके फल आकार में बड़े व छिलके पतले, कम बीज व गोंद वाले तथा मीठे स्वादिष्ट व गूदेदार होते हैं, ताजा खाने, शर्बत स्कवैश एवं परिरक्षित पदार्थ बनाने में प्रयुक्त होते हैं। उपलब्ध जैव विविधता से प्रारम्भ में विभिन्न क्षेत्रों सें अच्छे फल उत्पादन एवं औसत गुणवत्ता वाली स्थानीय किस्मों का चयन किया गया था जिनमें सिवान, कागजी बेल, देवरिया बड़ा, इटावा, गोंडा, चकिया, मिर्जापुरी, आदि किस्में है। ये किस्में संबंधित क्षेत्रों तक ही सीमित है और इनकी गुणवत्ता एवं उत्पादन क्षमता भी कम है। उत्तरप्रदेश के फैजाबाद, कानपुर व पंतनगर (उत्तराखण्ड) स्थित कृषि विश्वविद्यालयों में चल रहे प्रजाति विकास कार्य के फलस्वरूप नरेन्द्र बेल–4, 5, 7, 9, 16 व 17 तथा पंत उर्वशी, सुजाता, पंत अपर्णा, पंत शिवानी आदि नवीन किस्में विकसित की गई है। केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, रहमानखेड़ा, लखनऊ द्वारा सी.आई.एस.एच. बी–1, सी.आई.एस.एच. बी–2 का चयनित किस्म जारी किया गया है। इन किस्मों के पौधे कम उॅचाई वाले होते हैं तथा फल उत्पादन अच्छा मिलता है।

नरेन्द्र बेल–5 : – यह एक शीघ्र फल देने वाली किस्म है जिसके पौधे औसत ऊंचाई (3–5 मीटर) एवं अधिक फैलाव (2.5–5) वर्ग मीटर वाले होते है । इस किस्म के फल चपटे सिरे, मध्यम आकार (21 ग 25 से.मी.), मीठे स्वाद तथा कम बीज (40–50 बीज प्रति फल) वाले होते है। फलों का औसत वजन 900–1000 ग्राम होता है।

नरेन्द्र बेल–7 :– इस किस्म के पौधों की ऊंचाई अधिक (5–7 मीटर) तथा अपेक्षाकृत फैलाव

कम होता है। इसके फल गोल तथा छोटे होते हैं। फलों का औसत वजन 600–800 ग्राम होता है।

नरेन्द्र बेल–9 : मध्यम उंचाई (4–6 मीटर) एवं फैलाव वाली इस किस्म के फलों का आकार बड़ा (26X33 से.मी.) तथा अधिक मिठास होता है । इसके फलों का औसत वजन 1000–1500 ग्राम होता है, जिसमें गूदा अधिक तथा गोंद की मात्रा कम होती है। इस के पौधे मरूक्षेत्रीय जलवायु के प्रति सहिष्णु है। शुष्क क्षेत्र में उगाई जाने के लिए उपयुक्त किस्म है। इसके अलावा नरेन्द्र देव कृषि विश्वविद्यालय, फैजाबाद से एन.बी.–16 तथा एन.बी.–17 अधिक फल उत्पादन देने वाली किस्में चिन्हित की गई हैं।

पंत अपर्णा – यह एक बौनी किस्म है जिसकी शाखायें नीचे की तरफ लटकती हैं। फल गोल 600–800 ग्राम भार के और पतले छिलके वाले होते हैं।

पंत शिवानी – इस किस्म के पौधे ऊपर की ओर बढ़ने वाले मध्यम ऊंचाई के होते हैं। फल अण्डाकार लम्बे 1200–2000 ग्राम भार वाले होते हैं इनकी भण्डारण क्षमता अच्छी होती है। मध्यम समय में पककर तैयार होती है। फलों में रेशा कम, गूदा पीला मीठा व स्वादिष्ट होता है।

पंत सुजाता – इस किस्म के पेड़ मध्यम आकार के फैलने वाले होते हैं। फल गोल आकार के चपटे सिरे होते हैं जिनका औसत भार 1000–1400 ग्राम व पतले छिलके वाले होते हैं।

पंत उर्वशी – पौधों का आकार घना वृद्धियुक्त और लम्बे होते हैं। इनमें अण्डाकार आकार व 1.6 किलोग्राम वजन के बड़े फल लगते हैं। फल का छिलका मध्यम पतला, कम रेशा, सुवासित गूदा मीठे स्वाद वाला होता है।

गोमा यशि – यह एक चयनित किस्म है जो केन्द्रीय बागवानी परीक्षण केन्द्र गोधरा से विकसित की गई है। यह एक अच्छी फल उपज देने वाली तथा अर्धशुष्क बारानी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त किस्म है।

पौधे तैयार करना – बेल के पौधे बीज व कलिकायन (बडिंग) द्वारा तैयार किये जा सकते हैं। बीजू पौधों में कलमी पौधों की अपेक्षाकृत देर में फल आना प्रारम्भ होता है और फल की गुणवत्ता भी अच्छी नही होती। अतः उन्नत किस्म के पूर्ण सत्यता वाले पौधों को तैयार करने के लिये बडिंग विधि संस्तुत की जाती है। वानस्पतिक विधि से पौधा तैयार करने के लिये एक वर्ष की आयु के मूलवृंत की आवश्यकता होती है। मूलवृंत तैयार करने के लिये पके हुए देशी फलों से बीज निकालकर खाद, बालू व मिट्टी के बराबर मात्रा के मिश्रण से भरी हुई पॉलिथीन की 12 X 6 इंच आकार की ट्यूब्स या पौधशाला में तैयार की गई क्यारियों में जून–जुलाई में

बवाई कर देते हैं । बुवाई करने के पश्चात हल्की सिंचाई करते रहने पर लगभग 5–6 दिन में बीज अंकुरित होता है। एक वर्ष पुराने मूलवृत पर जुलाई से सितम्बर माह तक बडिंग द्वारा उन्नत किस्म के कलमी पौधे तैयार किये जा सकते है । बेल के पौधे जड़ कलम द्वारा भी तैयार किये जा सकते हैं। शुष्क क्षेत्र में जहा पर पौधों के स्थापना की समस्या होती है 'इन–सीटू बडिंग' करके बाग लगाये जा सकते हैं। इसके लिये निश्चित रेखांकन के पश्चात उचित स्थान पर बीजू पौधे रोपकर मूलवृंत तैयार कर लेते हैं तथा इनमें से अच्छे मूलवृंत पर बडिंग करके उसे उन्नत किस्म के पौधे में परिवर्तित कर देते है। सफल पौधे के मूलवृंत वाले निचले भाग से लगभग एक वर्ष तक नई कोपलें निकलती रहती हैं। इन नई अवांछनीय शाखाओं को समय समय पर काटते रहना चाहिए इससे मुख्य पौधा स्वस्थ व मजबूत होता है ।

पौधे लगाना – बेल का बाग लगाने के लिये सर्वप्रथम वर्गाकार या आयताकार विधि से 8X8 मीटर की दूरी पर रेखांकन कर निर्धारित स्थान पर वर्षा पूर्व 1X1X1 मीटर आकार के गड्ढ़े तैयार कर लेते हैं । इन गड्ढों के ऊपरी उपजाऊ मिट्टी में दो या तीन टोकरी सडी हुई गोबर की खाद या मींगणी तथा मिथाईल पैराथियान चूर्ण 5 प्रतिशत (50 ग्राम प्रति खड्ढा) मिलाकर भर देते हैं। जिन क्षेत्रों में क्षारीयता की समस्या है उन क्षेत्रों में पौध रोपण से पूर्व ही मिट्टी के मिश्रण में जिप्सम का प्रयोग करना लाभप्रद होता है। वर्षा ऋतु में जब गड्ढों की मिट्टी अच्छी तरह बैठ जाये तब इसके बीच में खुरपी से पौधे के पिण्ड के आकार का खड्डा बनाकर पौध रोपण कर देते है। पौधा लगाने के पश्चात् हल्की सिंचाई अवश्य करें। शुष्क क्षेत्र में वर्षा ऋतु में पौध रोपण करने पर अच्छी सफलता पायी गई है। सिंचाई सुविधा उपलब्ध होने पर फरवरी माह में भी पौधे लगाये जा सकते हैं।

बाग प्रबन्धन – पौध रोपण के पश्चात समय–समय पर उनकी देखभाल, सिंचाई, निराई, गुड़ाई, काट–छांट, खाद व उर्वरक का प्रयोग करना आवश्यक होता है। बाग लगाने के साथ ही साथ उसके चारों तरफ कांटेदार बाड़ व तेजी से बढ़ने वाली वायुरोधक पौधों की एक या दो कतारें अवश्य लगानी चाहिए। शुष्क क्षेत्रों में फालसा, करौंदा, गूंदा, अरडू, बोरडी आदि के पौधे बाड़ एवं वायुरोधक के लिए उपयुक्त पाये गये हैं जबकि पर्याप्त वर्षा वाले क्षेत्रों में शीशम, गूंदा, सिरस, नीम, महुआ, इमली, व बेल के बीजू पौधों को बाग के चारों तरफ वायुरोधक के रूप में लगा सकते हैं। मरू क्षेत्रों में मार्च से जुलाई तक तेज धूल भरी आंधियां चलती हैं एवं अत्यधिक गर्मी पड़ती है अतः इन क्षेत्रों में नवरोपित पौधों को वातावरण की इन परिस्थितियों से बचाने

के लिये अस्थायी वायुरोधक के तौर पर तेजी से बढ़ने वाली अरण्डी के पौधे भी लगाये जा सकते हैं। इसी प्रकार नवम्बर से जनवरी तक पड़ने वाली ठण्डी एवं पाले से बचाव हेतु पौधों के चारों तरफ घास फूस की झोंपड़ी बनानी चाहिए। सर्दियों के दिनों में हल्की सिंचाई करके पौधों को पाले से बचाया जा सकता है।

सिंचाई – बेल के पौधों को स्थापित करने के लिये प्रारंभिक अवस्था में सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है परन्तु इसके पौधे असिंचित क्षेत्र जहॉ पर औसत वार्षिक वर्षा 300–500 मि.मी. होती है, में अच्छी तरह पनप सकते हैं। जहां अन्य फलदार पौधों को गर्मी के दिनों में पानी की अत्यन्त आवश्यकता होती हैं वहीं बेल के पौधे गर्मियों में अपनी पत्तियॉ गिरा कर सुषुप्ता अवस्था में चले जाते हैं और सूखे मौसम को सहन कर लेते हैं। चूंकि पौधों की वृद्धि एवं फल विकास वर्षा ऋतु में ही अधिक होता है अतः उपलब्ध वर्षा जल को नमी संरक्षण द्वारा उपयोग में लाकर बेल से अच्छा उत्पादन लिया जा सकता है ।

खाद एवं उर्वरक – फलवृक्षों के लिये पोषक तत्वों की मात्रा का निर्धारण भूमि की उर्वरता पर निर्भर करती है। अन्य फलदार पौधों की तरह ही बेल से समुचित उत्पादन लेने के लिये पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। बेल के पौधों को 10–15 कि.ग्रा. सड़ी हुई गोबर की खाद, 100 ग्रा. नाइट्रोजन, 50 ग्रा. फास्फोरस तथा 75–100 ग्राम पोटाश प्रति वर्ष प्रति वृक्ष के हिसाब से देना चाहिए। जब पौधे की आयु 5–7 वर्ष हो जाये तो यह मात्रा निश्चित कर देना चाहिए। जुलाई–अगस्त खाद एवं उर्वरक देने का सबसे उपयुक्त समय है। पौधे के तने से 2–3 फीट की दूरी पर चारों तरफ परिधि में खाद मिट्टी में मिलाकर देते हैं तत्पश्चात् सिंचाई करनी चाहिए। बेल के पौधों में गौण तत्वों की कमी के लक्षण भी देखे गयें हैं। जिसकी पूर्ति के लिये 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट के घोल का पर्णीय छिड़काव क्रमशः जुलाई, अक्टूबर व दिसम्बर माह में करना लाभदायक होता है।

सधाई और छंटाई – बेल के पौधों में अत्यधिक काट–छांट करने की आवश्यकता नहीं होती है परन्तु नये पौधों का उपयुक्त ढांचा तैयार करने के लिये प्रारम्भिक अवस्था में सधाई (ट्रेनिंग) करना अत्यंत आवश्यक होता है। सूखी एवं रोगग्रस्त शाखाओं को समय–समय पर काट कर अलग कर देना चाहिए। वर्षा ऋतु से पहले जब प्रायः पौधों में पत्तियॉ नहीं होती, कटाई–छंटाई के लिये उपयुक्त समय होता है । हल्की कांट–छांट वर्षा पश्चात् की जा सकती है।

अन्तः फसलें (इण्टरक्रॉपिंग)– बाग लगाने के तीन चार वर्षों तक पौधों के कतारों के बीच

की खाली भूमि में अन्तःशस्यन किया जा सकता है। जिससे भूमि के समुचित उपयोग के साथ–साथ अतिरिक्त आय भी प्राप्त होती है। बारानी क्षेत्रों में लोबिया, मोठ, ग्वार, मूंग आदि दलहनी फसलें उगानें से भूमि की उर्वराशक्ति में सुधार एवं भू–क्षरण में कमी होती है। सिंचित क्षेत्रों में सब्जियॉ जैसे बैगन, मिर्च, मटर, गोभी इत्यादि उगाया जा सकता है। अन्तः फसलें उगाने से पौधों की वृद्धि एवं उत्पादन पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता है बल्कि इससे पौधों की अच्छी देख–रेख तथा बाग में खरपतवार का नियंत्रण होता है ।

पौध संरक्षण – बेल के पौधे अधिक सहिष्णु होने के कारण इन्हें अत्यधिक देख–रेख करने की जरूरत नहीं पड़ती है परन्तु इनमें लगने वाले रोग एवं कीड़ों की रोकथाम करना भी आवश्यक है। शुष्क क्षेत्र में नये पौधों में दीमक लगने की समस्या देखी गई है, पौधो की सिंचाई करते समय क्लोरोपायरिफॉस कीटनाशी की 4–5 बूंदें हर एक पौधे के थाले में देने पर दीमक से बचाव होता है। बेल में कैंकर रोग (बैक्टीरियल) लगने पर पत्तियों पर भूरे धब्बे दिखाई पड़ते हैं जिसकी रोकथाम के लिये स्ट्रेप्टोमाइसिन (500 पी.पी.एम.) के घोल का दो–तीन बार छिड़काव करें। बेल में कई बार अपरिपक्व फलों के गिरने व फटने की समस्या भी होती है। इसका पूर्ण निदान नहीं है लेकिन इसे बाग प्रबन्ध की उन्नत तकनीक को अपनाकर कम किया जा सकता है। पर्ण भक्षी और सुरंग बनाने वाली इल्लियां/स्केल कीट पौधों की पत्तियां व कोमल तना को नुकसान पहुँचाती है। इन कीड़ों के नियंत्रण के लिये मोनोक्रोटोफास कीटनाशक का 0.01 प्रतिशत घोल का 7–10 दिन अन्तराल पर दो–तीन बार छिड़काव करना चाहिए। वर्षा के मौसम में पत्ती खाने वाले कीट के नियंत्रण हेतु रोगोर 0.2 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें। अपरिपक्व तोड़ें गये या तोड़ते समय चोटिल फलों में भंडारण या परिवहन के समय ही अन्तर्विगलन (सड़न) रोग लग जाता है जिससे गूदा सड़कर पूर्णतया नष्ट हो जाता है। इससे बचाव के लिये परिपक्व फलों को ही तोड़ें तथा फलों की तोड़ाई सावधानीपूर्वक करे जिससे कि फल कम से कम क्षतिग्रस्त हों ।

फलों की तोड़ाई, उपज एवं विपणन – कलमी बेल के पौधों में चार–पॉच वर्ष बाद फलत प्रारम्भ हो जाता है जबकि बीजू पौधों में 6–7 वर्ष बाद फलत आती है। फल तैयार होने में लगभग 10–11 माह का समय लगता है। अप्रैल–मई माह में जब फलों का रंग गहरा हरा से हल्का पीला होने लगे तब फलों की तोड़ाई करनी चाहिए पके फलों के डंठल आसानी से टूट जाते हैं। फलों की अगेती तुड़ाई करके कृत्रिम रूप से पकाकर बेचने से बाजार मूल्य अच्छा

मिलता है। गर्मियों के दिन में फल अधिक फटते हैं इससे बचाव हेतु परिपक्व फलों को फरवरी–मार्च में ही तोड़कर कृत्रिम रूप (इथेरल 1500 पीपीएम से उपचारित कर) से पकाया जा सकता है। इस प्रकार फलों को अगेती अवस्था में तोड़ देने से फटने की समस्या से भी बचाया जा सकता है। साधारणतया 8–10 वर्ष के वृक्ष से 60–100 फल प्राप्त होते हैं जबकि एक पूर्ण विकसित वृक्ष से 150 से 200 तक फल प्राप्त किए जा सकते हैं।

फल उत्पादन किस्मे, आयु एवं पौधों के पोषण पर निर्भर करता है परन्तु उन्नत बाग प्रबन्धन तकनीकों को अपनाकर एक पूर्ण विकसित पौधे से औसतन एक से दो क्विंटल तक फल उपज प्रति वर्ष प्राप्त किया जा सकता है। फल का छिलका कठोर होने के कारण अधिक समय तक भण्डारित करके रख सकते हैं तथा दूरस्थ बाजारों को विपणन हेतु भेजा जा सकता है।

*****

अनार की खेती

आई.एम. वर्मा

स्वामी केशवानंद राज. कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर

अनार अथवा दाड़म पौष्टिक गुणों से भरपूर रसदार एवं स्वादिष्ट फल है। अनार का शुष्क वातावरण में सफलतापूर्वक उत्पादन किया जा सकता है। वास्तव में अनार के उत्पादन के लिये शुष्क जलवायु उपयुक्त है। इसके फल में पौष्टिक तत्व, खनिज एवं विटामिन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं। इस कारण रोगियो के आहार के लिये ये उपयुक्त है। प्रति 100 ग्राम फल से 1.6 ग्राम प्रोटिन, 0.1 ग्राम खनिज, 5.1 ग्राम रेशा, 14.5 मि.ग्रा. कैल्शियम, 70 मि. ग्राम फास्फोरस, 0.3 मि. ग्राम लौह, 0.1 मि. ग्राम राइबोफ्लैविन, 0.3 मि. ग्राम नियासिन, 16 मि. ग्राम विटामिन सी प्राप्त होता है। स्वास्थयवर्द्धक होने के कारण अनार अनेक रोगों के उपचार में भी काम आता है। इसकी पैदावार मुख्यताः महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान, कर्नाटक, आन्ध्रप्रदेश, तमिलनाडु एवं उतरप्रदेश राज्यों में कि जाती है। इसके उत्पादन के कुल क्षेत्रफल का लगभग दो तिहाई (10, 713 हेक्टेयर) भाग अकेले महाराष्ट्र में ही है। राजस्थान में लगभग 370 हैक्टैयर क्षेत्र में अनार के बाग है। अनार के लाल रंग के सुन्दर फूल तथा आकर्षक फल गृहवाटिका को सुशोभित करते है।

औषधीय गुण एवं उपयोग

प्रायः अनार के फल ताज ही खायें जाते हैं। फलों का रस मधुर एवं स्वास्थयवर्द्धक होता है। ग्रीष्म ऋतु में अनार के रस का शर्बत बहुत स्फूर्तिवर्द्धक होता है। आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली में दीर्घ जीवन और अच्छे स्वास्थ्य के लिये अनार को औषधि माना गया है। अनार के सेवन से पेट के रोग व विकार दूर होते हैं। इसके उपयोग से रक्तशोधन का कार्य ठीक होता है। हौम्योपैथी तथा यूनानी चिकित्सा पद्धतियां भी रोग मुक्ति के लिये अनार के फल को प्रकृति का बहुमुल्य उपहार मानती है। फल के छिलके चुसने से खांसी में लाभ होता है। इसके छिलकों को पानी में उबाल कर निकाला गया रस बच्चों के पेट के कृमि को नष्ट करने मे सहायक होता है। दांतों के रक्त स्त्राव रोकने के लिये सूखे फलों का मंजन करना लाभदायक माना गया है।

फलों से पेय पदार्थ तथा जैली बनाये जा सकते हैं। परिरक्षित करके रस को काफी समय तक रखा जा सकता है। कपड़ों की रंगाई के लिये फलों के छिलके काम में लिये जाते हैं।

भूमी और जलवायु

बाग लगाने के लिये 6.5 से 7.5 पी.एच मान वाली गहरी बलुई दोमट मिट्टी अत्यधिक उपयुक्त होती है। इसके पौधों में लवण एवं क्षार सदन करने की क्षमता होती है। अतः क्षारिय भूमी में इसकी बागवानी की जा सकती है। अनार के पौधों में सुखा सहन करने की भी क्षमता होती है परन्तु फल विकास के समय नम जलवायु अत्यधिक उपयुक्त है। इसके फलों के अच्छे विकास के लिये रात के समय ठण्डक तथा दिन में शुष्क गर्म जलवायु काफी सहायक होते हैं। इस प्रकार की जलवायु से इसके दानों में रंग एवं मिठास का विकास होता है। वातावरण में अत्यधिक नमी से फलों की गुणवता पर विपरीत प्रभाव पडता है।

उन्नत किस्में

वैसे तो देश में अनार की अनेक किस्में उगाई जाती है परन्तु राजस्थान में जालौर सीडलैस, महाराष्ट्र में गणेश, जी 137, मस्कट, पी 23 व पी 26, कर्नाटक में बेसिन सीडलेस तथा ज्योति, गुजरात में धोलका और तमिलनाडू में यरकाड किस्में अधिक प्रचलित है। अनार के फलों का उपयोग अनारदाना बनाने में भी किया जाता है। इसके लिये अधिक खटास वाली किस्में उपयुक्त होती है। अनार की निम्नलिखित प्रमुख किस्में हैं –

गणेश – इसके फल आकार में बड़े (औसत वजन 200–300 ग्राम) होते हैं। दाने हल्के गुलाबी, रसदार और खाने में मीठे एवं स्वादिष्ट होते हैं। पेड की औसत उपज 30–100 फल होती है। इसके फल निर्यात के लिये उपयुक्त है।

मस्कट – इस किस्म में 300–350 ग्राम औसत वजन वाले फल लगते हैं, जिनके दानों का रंग हल्का सफेद व बीज कठोर होते हैं। दानें स्वादिष्ट व मीठे होते हैं। पी 23 व पी 26 किस्में इसी के पेड़ों से चयनित की गई है जिनके फलों का आकार व वजन अधिक होता है। दाने गुलाबी व मीठे होते हैं ओर वजन अधिक होता है।

बेसिन सीडलेस – इस किस्म के फलों का वजन 250–325 ग्राम, आकार बड़ा तथा रंग लाल होता है। गुलाबी रंग के दाने मीठे स्वादिष्ट रसदार व मुलायम होते है। ज्योति (डीकेवीके) इससे चयनित्त की गई नई किस्म है जिसके दाने अधिक लाल, रसदार व बीज मुलायम होते हैं।

जालौर सीडलेस – फलों का औसत वजन 250–300 ग्राम तथा उपज 70–100 फल प्रति वृक्ष होती है। इसके दाने गुलाबी लाल, रसदार व स्वादिष्ट तथा बीज बहुत मुलायम होते

हैं। इस किस्म में फलों के फटने की क्षमता भी कम पाई गई है।

ङोलका – इसके फल का रंग लाल तथा वजन 300–350 ग्राम तक होता है। हल्के गुलाबी रंग के दाने अधिक रसदार व मीठे होते हैं। इसके अलावा हाल ही में विकसित की गई संकर किस्म मृदुला के फल बड़े, दाने स्वादिष्ट, लाल व मुलायम होते हैं।

पौध तैयार करना

अनार के पौधे बीज कलम, गुटी व दाब द्वारा तैयार किये जाते हैं। इसके लिये कलम व गुट्टी विधी अधिक प्रचलित है। पौधे तैयार करने के लिये एक वर्ष पुरानी शाखाओं से प्राप्त 9–10 इंच लम्बी कलमों को किसी पादप हार्मोन (सेरेडेक्स बी, रूटोन, रूलेब) से उपचारित करके पौधशाला में फरवरी मार्च अथवा जून–जूलाई में लगाते हैं। हार्मोन के प्रयोग से कलमों में जड़े जल्दी फूटती है तथा लगभग 8–10 माह में रोपने लायक पौधे तैयार हो जाते हैं। गुही बंधकर भी पौधे तैयार किये जाते हैं। बीजू पौधो की तुलना में कलमी पौधे ज्यादा फल देने लगते है। कलमों को बालूरेत, चिकनी मिट्टी व खाद के बराबर मात्रा के मिश्रण से भी हुई पॉलीथीन की नलियों में अथवा अच्छी तरह से तैयार की गई क्यारी में लगाते हैं। नर्सरी में पौधों की हल्की सिंचाई आवश्यकतानुसार करनी चाहिये।

पौधे लगाना

कलमों को पौधशाला के ऐसे समय में लगाना चाहिये कि जुलाई माह तक पौधे रोपण के लिये तैयार हो जो कि इस कार्य के लिये सबसे उपयुक्त समय होता है। वैसे पर्याप्त सिंचाई सुविधा होने पर बसन्त ऋतु (फरवरी) में भी पौधे लगाये जा सकते हैं। अनार के पौधों को वर्गाकार या आयताकार विधी से 5x5 या 6x4 मीटर की दुरी पर लगाया जाना चाहिये। पौधे लगाने के लिये 60x60x60 सेमी आकार के गढे पूर्व तैयार कर लेने चाहिये। उपर की उपजाऊ मिट्टी में सड़ी हुई 10 कि.ग्रा. गोबर या मींगनी की खाद तथा 50 ग्राम मिथाइल पैराथियान कीटनाशक चूर्ण मिलाकर इनको भर देना चाहिये जिससे की ये वर्षा ऋतु में पौध रोपण के लिये तैयार रहे। पौधे लगाने के लिये पौधों को चारों और मिट्टी को अच्छी तरह दबाकर हल्की सिंचाई अवश्य करनी चाहिये।

सिंचाई

अनार के पौधों में सूखा सहन करने की क्षमता तो होती है परन्तु अच्छी गुणवता वाले फलों के उत्पादन के लिये पौधों में 10–15 दिनों के अन्तराल पर सिंचाई करना आवश्यक होता

है। अतः अनार में सिंचाई समुचित व्यवस्था होनी चाहिये। पौध रोपण के बाद शुरू के दो–तीन वर्ष तक अधिक सावधानी की आवश्यकता होती है। सिंचाई के बाद थालों में खुरपी या हैण्ड से हल्की गुड़ाई करना चाहिये। फल विकास समय वातावरण में नमी के असंतुलन के कारण फल फट जाते हैं। इसके समाधान के लिये फल विकास के समय भूमी तथा वातावरण में निरन्तर प्रर्याप्त नमी बनाए रखनी चाहिये। ड्रिप द्वारा सिंचाई की व्यवस्था इसमें सहायक होती है। इस विधी में पानी के उपयोग पर भी फल उत्पादन अधिक होता है। बोरेक्स के 0.2 प्रतिशत घोल के छिड़काव से भी फलों को फटने से कुछ हद तक बचाया जा सकता है।

खरपतवार नियंत्रण

थालो में खरपतवार नियंत्रण करना आवश्यक है। जो निराई करके या रसायनों के छिड़काव से किया जा सकता है। एक हैक्टैयर बगीचे में ग्लाइफोसेट की 2.5 लीटर मात्रा को 800 लीटर पानी में मिलाकर 15 दिन के अंतराल पर छिड़काव करने से सभी प्रकार के खरपतवार नष्ट हो जाता है।

खाद व उर्वरक

पौधों में अच्छी बढ़वार और फलतः के लिये उचित मात्रा में पोषक तत्व देना चाहिये। खाद एवं उर्वरक की मात्रा खेत की मिट्टी का परीक्षण करवाकर ही सुनिश्चित करना चाहिये। सामान्य उर्वरता वाली भूमि में एक वर्ष के पौधे में 10 किलो सड़ी हुई गोबर की खाद, 100 ग्राम यूरिया, 250 ग्राम सिंगल सुपर फास्फेट तथा 75–100 ग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश देना चाहिये लेकिन पांच वर्ष के बाद क्रमशः 500, 1250, 500 ग्राम उर्वरक प्रति वर्ष देना चाहिये। शुष्क क्षेत्र में उर्वरक वर्षा प्रारम्भ होने के बाद देना ठीक रहता है। मध्य जनवरी से फरवरी माह में भी खाद एवं उर्वरकों का उपयोग किया जा सकता है। पौधों के चारों और एक से डेढ मीटर की परिधि में 15 सेमी गहराई में खाद और उर्वरक डालकर मिट्टी में मिला देना चाहिये।

बाग की देखभाल

अनार का पौधा झाड़ीनूमा होता है, इसलिये पौधे का उचित आकार व ढाँचा बनाने के लिये सफाई व काँट–छांट की आवश्कयता होती है। जमीन की सतह से ही हर पौधे में 3–4 मुख्य तनों को बढ़ने देना चाहिये उससे पेड़ की ऊँचाई अधिक नहीं जाती है। उचित कटाई–छँटाई करके रोग्रस्त व सूखी टहनियों को निकालते रहना चाहिये।

अनार के फलन में तीन मुख्य समय होते हैं जिन्हें अम्बे बहार (जनवरी–फरवरी) 'मृग

बहार' (जून–जूलाई) और 'हस्त बहार' (सितम्बर–अक्टूबर) होते हैं। वर्ष में कई बार फल व फूल लगना, उपज व गुणवता की दृष्टि से ठीक नहीं रहता है। इसलिये बहार नियत्रण करना आवश्क हो जाता है। इसके लिये अवांछित बहार के समय सिंचाई बंद कर देते हैं एवं थालों में गहरी गुड़ाई करके कुछ समय के लिये जड़ों को खुला छोड़ देते हैं। शुष्क क्षेत्र में पानी की कमी के कारण प्रायः मृग बहार की फसल ली जाती है। इससे बेहतर फल विकास वर्षा ऋतु में पूर्ण हो जाता है। कुछ अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में 'अम्बे बहार' की फसल लेना ठीक रहता है। क्योंकि यहाँ 'मृग बहार' के फल अधिक नमी के कारण रोग व कीटों के प्रकोप से खराब हो जाते हैं।

विपरित परिस्थितियों से बचाव

गर्मी के मौसम में गर्म व तेज हवायें तथा सर्दी में ठण्डी हवायें उत्पादन व फलों के गुणवता व विकास पर प्रतिकुल प्रभाव डालती है। अतः इन परिस्थितियों से बचाने के लिये बाग के चारों तरफ वायुरोधक पेड़ों की कतारे लगानी चाहिये। उतर व पश्चिम दिशा में वायु का प्रकोप अधिक होता है अतः बाग की इन दिशाओं में दोहरी या तिहरी फुहारों में वायूरोधक पौध रोपण करना चाहिये। तेजी से बढ़ने वाली प्रजाती के पौधे जैसे – नीम, शीशम, अरडू, सिरस, गूंदा इत्यादि इस कार्य के लिये उत्तम पाये गये हैं।

अन्तःशस्य (इण्टरक्रापिंग)

बाग लगाने के बाद तीन चार वर्ष तक पेड़ों के बीच काफी जगह खाली रहती है। इन प्रारम्भ के वर्षों में पौधों के पूर्ण फलदायी होने तक बाग में सब्जियां तथा अन्य दलहनी फसले उगाकर अतिरिक्त आमदनी प्राप्त की जा सकती है। इसके अतिरिक्त अन्तः शल्य से मृदा कटाव रोकने, पौधों को पाले से एवं तेजहवाओं से बचाने, मृदा की उर्वरता एवं जलाधारण क्षमता बढ़ाने भूमी की भौतिक दशा सुधारने एवं खरपतवार नियंत्रण में भी सहायता मिलती है।

रोग तथा कीड़ों से बचाव

अनार के पौधों व फलों में लगने वाले प्रमुख रोगों के लक्षण, कीड़ों की पहचान व नियंत्रण के उपाय नीचे दिये जा रहे हैं –

पती व फल धढवा रोग -- इस रोग का प्रकोप ज्यादातर 'मृग बहार' की फसल में होता है। वर्षा काल में पतियों व फलों के उपर फफूंद के भूरे धब्बे दिखाई देने लगते हैं। इसकी रोकथाम के लिये मेन्कोजेब (डायथेन एम–45) फफूंदनाशी दवा का 0.3 प्रतिशत घोल या बोर्डो मिश्रण के 1 प्रतिशत के तीन या चार छिड़काव धब्बे आने के बाद 10–15 दिनों के अन्तराल पर

करना चाहिये।

फल सड़न रोग – इस रोग के प्रकोप से फल सड़ने लगते है। इसके नियंत्रण के लिये रोग के लक्षण आने पर बेविस्टीन फफूंदनाशक दवा के 0.1 प्रतिशत घोल के दो छिड़काव 15 दिनों के अन्तर पर करने चाहिये।

अनार की तितली – इसके द्वारा दिये गये अण्डो से निकली सुण्डिया फलों के अन्दर प्रवेश करती है तथा उनके गुदे को खाती रहती है। इसके बचाव के लिये वर्षा ऋतु में फल विकास के समय 0.002 प्रति. डेल्टामेक्रीन या 0.03 प्रतिशत फॉस्फोमिडान कीटनाशी दवा का 15–20 दिनों के अन्तराल पर दो बार छिड़काव करना लाभदायक पाया गया है।

तना बेधक – व्यस्क कीट नयी कोपले, पतियां और टहनीया खाते हैं। जबकि त्रिडार तने में सुराख बनाकर अन्तः उतक खाते रहते हैं। इसकी रोकथाम के लिये 0.03 प्रतिशत डायक्लोरोवास घोल में भीगी रूई कीट के प्रवेश द्वार में ठुसकर मिट्टी का लेप कर देते हैं।

सेमीलूपर – इसके शल्म फलों का रस सूसते है तथा सूण्डिया अन्दर का गुदा खाती है।

इसके अलावा मीलीबग,माइट, भोयला, थ्रिप्स आदि कीट भी फलों को नूकसान पहुंचाते हैं।

फल तुड़ाई व उपज

अनार के फल जब पीले या लाल हो जाये तब उनकी तुड़ाई करनी चाहिये। प्रारम्भिक अवस्था में जड़ों से 20–25 फल ही प्राप्त होते है। लेकिन पूर्ण विकसित पेड़ से 80–100 फलों की प्राप्ती होती है। इस प्रकार अनार के एक हेक्टेयर बाग से 30,000–40,000 रूपयों की आय प्रतिवर्ष प्राप्त होती है। अनार के फलों के तोड़ाई के बाद नुकसान कम होता है। अतः इनकों काफी दिनों तक भण्डारित कर सकते हैं।

*****

गुन्दा और लसौड़ा की खेती

आई.एम.वर्मा
एस.के.आर.ए.यू., बीकानेर

"गुन्दा" शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में फलने-फूलने वाला वृक्ष है। इसके फल लसलसेदार एवं वृक्ष मध्यम आकार का होता है। यह लसौड़ा, लहसुआ, गुन्दा, गौंढा, इण्डियन चैरी आदि नामों से भी जाना जाता है। ज्यादातर इसके खेती के चारों ओर तेज हवाओं को रोकने हेतु वायुरोधक के रूप में उपयोग लिया जाता है।

गुन्दा के कच्चे फल, सब्जी, आचार बनाने में तथा पकने पर सीधे खाने के काम लिए जाते हैं। फलों को सुखाकर भी बेमौसम सब्जी बनाई जाती है। इसकी लकड़ियां ईंधन के रूपमें अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में गुंदा के उत्पादन क उपयोगिता काफी है। यह "बोरनजियेसी" कुल का पौधा है।

भूमि एवं जलवायु :

यह सभी प्रकार की मृदा में उगने वाला कठोर प्रकृति का वृक्ष है। पश्चिमी राजस्थान की विपरीत जलवायु में फलने-फूलने की क्षमता रखता है।

किस्म :

इसकी किसमों के लिए कोई खास अनुसंधान कार्य आनुवंशिकी कार्य नहीं किये गये हैं। फिर भी "सारस" गुन्दा व "पुष्कर लोकल" किस्में अधिक प्रचलित हैं।

प्रवर्धन :

यह बीज एवं वानस्पतिक विधियों से उगाया जाता है। "टी-बडिंग" द्वारा इसका वानस्पतिक प्रवर्धन "जुलाई-अगस्त" माह में किया जाता है। इसके लिए एक वर्ष पुराने पौधे पर बड़े आकार वाले फल वृक्षों से दो माह पुरानी सांकृर शाखा (सायन) को टी-बडिंग द्वारा स्थापित किया जाता है।

पौधे लगाना :

मई-जून माह में 3X3X3 फुट आकार के गड्डे 6X6 मीटर की दूरी पर खोद कर खुला छोड़ देते हैं तथा रोपाई से 20-25 दिन पहले गड्डों में 20-25 किलो अच्छी तरह से सड़ी गली गोबर की खाद एक किग्रा. सुपर फास्फेट को गड्डों से निकली मिट्टी में मिलाकर कर देते हैं तथा सिंचाई कर छोड़ देते हैं। वर्षा आरम्भ होते ही जुलाई-अगस्त में50-100 ग्राम एण्डोसल्फान 4 प्रतिशत चूर्ण या क्यूनॉलफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण प्रति गड्डे की दर से मिलाकर पौधे रोपण कर देते हैं।

कटाई-छंटाई (ट्रेनिंग-प्रनिंग) :

पौधों की प्रारम्भिक छोटी अवस्था में सशक्त एवं सही आकार देने के लिए समय-समय पर बगल वाली शाखाओं को काटते रहें। फलदार वृक्षों में कटाई-छंटाई का

कार्य जनवरी से मध्य फरवरी तक करनी चाहिए। अनचाही, रोगग्रस्त सूखी टहनियां और आपस में रगड़ खाती हुई टहनियां काट देनी चाहिए।

सिंचाई :

गुन्दा वृक्षों को कम पानी की आवश्यकता होती है। साधारणतौर पर फल विकास के समय सिंचाई करें ताकि फल अच्छे विकसित होवें, फूल आने के समय बाहरी सिंचाई न करें वरना फूल झड़ जायेंगे।

खाद एवं उर्वरक :

अच्छे फलोत्पादन हेतु पौधों में फूल आने से पूर्व 30-40 किग्रा. सड़ी गली गोबर की खाद मुख्य तने के चारों तरफ 50 सेमी दूरी पर पौधों के फैलाव की ओर डेढ़ से दो फुट की गहराई तक खाद-उर्वरक फैलाकर गुड़ाई कर, सिंचाई कर देवें। एक किग्रा. यूरिया, डेढ़ किग्रा. सुपरफ़ास्फेट एवं 250 ग्राम म्यूरेट आफ पौटाश तीनों की अधिक मात्रा कटाई-छंटाई पश्चात् तथा शेष अवधि मात्रा फल बनना आरम्भ होने पर देवें।

फूल एवं फल बनाना :

गुन्दे में फूल एवं फल आने का समय क्षेत्रानुसार निर्भर है। मुख्यतः फूल मार्च-अप्रेल माह में आना शुरू होते हैं। फूलों का आना 40-50 दिनों तक चलता रहता है। फल बनते समय जिब्रेलिक एसिड-3 का 100 पी.पी.एम. (1ग्राम 10 लीटर पानी में) घोल छिड़कना लाभदायक पाया गया है।

कीट रोग प्रबन्ध :

समान्यतः गुन्दे में कीट-रोग का प्रकोप कम ही होता है। यदि पत्तियों पर पत्ती धब्बा रोग दिखाई दे तो कापर आक्सीक्लोराइड का 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल कर छिड़काव करें।

फल तुड़ाई एवं भण्डारण :

फल मध्य मई से तुड़ाई लायक हो जाते हैं। फलों की तुड़ाई हरी अवस्था में की जाती है, जब फल पूर्ण परिपक्व एवं फलों में गुदा ढंग से बन जाये। इसके फलों को डंठलो सहित तोड़ना चाहिए, जिससे फल काफी दिनों तक ताजा रहे।

उपज :

उन्नतः वैज्ञानिक विधियां अपनाकर 30-50 किग्रा. फल प्रति पेड़ प्राप्त किये जा सकते हैं। प्रतिवर्ष एक हैक्टयर (277 पेड़) क्षेत्र से लगभग 1 लाख रुपये की आय प्राप्त की जा सकती है।

*****

करौंदा एवं फालसा की खेती

हरे कृष्ण
केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर

करौंदा एवं फालसा दोनो फलीय फसलें शुष्क क्षेत्रों में उत्पादन के लिए सर्वथा उपयुक्त हैं। ये फसलें बहुत ही कम रख–रखाव के साथ खेतों में आसानी से उगाए जा सकते है। करौंदा एक सदाबहार, कांटोयुक्त, झाड़ीनुमा फल पौधा है जबकि फालसा एक पर्णपाती फल है जिसकी पत्तियां शीत ऋतु में झड़ जाती हैं। करौंदा एवं फालसा के फल छोटे एवं अम्लीय स्वाद के होते है। इन फलों में विटामिन ए एवं सी तथा खनिज लवण जैसे लौह तत्व एवं फॉस्फोरस प्रचुर मात्रा में पाए जाते है। राजस्थान के जिलों जैसे बीकानेर, उदयपुर, जयपुर, अजमेर, जोधपुर जिलों में इनकी खेती सफलतापूर्वक की जाती है। इसी कारण इन्हें परती भूमि रास्तों के किनारे अथवा अन्तराशस्यं के रूप में प्रायः उगाते हैं। जहां फसलों के मीठे एवं रसदार फलों को स्वादिष्ट स्कवैश अथवा शरबत बनाने के रूप में किया जाता है वहीं करौंदा के फल आचार, कैण्डी एवं जैली बनाने के लिए उपयोग में लाए जाते है। इन फलों से बनाये गयं परिश्कृत खाद्य एवं पेय पदार्थ न केवल रूचिकर होते है अपितु यह विभिन्न एण्टीऑक्सीडेन्ट की उपस्थिति के कारण स्वास्थय के लिए लाभकारी भी होते हैं।

जलवायु एवं भूमि – दोनो ही फलीय फसले जलवायुवीय एवं विभिन्न मृदा कारकों के प्रति सहिष्णु होते है। अतः, गर्म एवं सूखी जलवायु वाले क्षेत्रों में जहां अधिकांश फलों के वृक्ष उगाने में कठिनाई होती है, इन्हें भली भांती उगाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त समुद्रतलीय नम जलवायु वाले प्रदेषों में भी इनका सफलतापूर्वक उत्पादन किया जा सकता है और मैदानी भागों में तो इन्हें उगाने में कठिनाई ही नहीं होती है। इनके लिए गहरी उपजाऊ दोमट मिट्टी विशेष रूप से अच्छी मानी जाती है। परन्तु, साधारणतया ये लगभग सभी प्रकार की मिट्टियों में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। इसी प्रकार, लोग इन्हें परती भूमि, रास्तों के सहारे अथवा अन्तराशस्य के रूप में ही उगाते है।

उन्नत किस्में – फालसा की संकरी एवं शरबती छोटी किस्में अब तक प्रचलित है। संकरी जाति के पौधे बड़े होते है किन्तु फल छोटे और खट्टे होते है। शरबती जाति के फालसे के पौधे फैलावदार होते है। फल बड़े, मीठे व रसदार होते है जिन्हें स्कवैश या शरबत बनाने के

लिए उपयोग में लाया जाता है।

करौंदा की मुख्य प्रचलित प्रजातियों में पंतनगर विश्वविघालय द्वारा विकसित पंत मनोहर, पंत सुवर्णी एवं पंत सुदर्शन प्रमुख है।

प्रर्वधनः– चूंकि फालसा के पौधे स्वपरागित होते है अतः, इन्हें बीज द्वारा ही तैयार किया जाता है इसके बीज बोने का समय वही होता है जो कि फालसा के फलों के पकने का होता है। क्योंकि इसके बीज को फल से निकालकर भण्डारण करने पर अंकुरण शक्ति घट जाती है। अतः, पके हुए बड़े फलों से मई माह में बीज निकालकर तुरन्त ही बो देते हैं। इस विधि से पौधे अधिक स्वस्थ रहते हैं।

इसी प्रकार, करौंदा को भी मुख्यतः बीज द्वारा ही उगाते हैं। चूंकि बीज पौधों की वृद्धि धीमी रहती है अतः इन्हें तैयार होने में एक वर्श का समय लग जाता है। इसके ताजे बीजों को अगस्त–सितम्बर माह के दौरान बीजाई करते है जो कि 60 दिनों के भीतर अंकुरित हो जाते हैं। पादप वृद्धि नियामक जैसे जिब्रेलिक अम्ल (1000 पी.पी.एम.) के 6 छिड़काव एक माह के अन्तराल पर करने पर पौधों की बढ़वार शीघ्र होती है। वायुदाब अथवा माउण्ड लेयरिंग द्वारा भी करौंदा के पौधे तैयार किए जा सकते है। जिसके लिए क्रमशः 5000 पी.पी.एम. एवं 7500–10000 पी.पी.एम. आई.बी.ए. हॉरमोन की आवश्यकता होती है। जुलाई–अगस्त माह सबसे उपयुक्त है इन विधियों द्वारा करौंदा की पौध तैयार करने के लिए।

पौधे लगाने की विधिः– फालसे के पौधे 2–2.5 मी. एवं करौंदा के पौधे 3–5 मी. की दूरी पर लगाए जा सकते हैं। फरवरी में पौधों को लगाना सर्वोत्तम होता है। यद्यपि, मानसून के दौरान भी पौधे सफलतापूर्वक रोपित किए जा सकते है।

खाद एवं उर्वरक – पौधों को लगाते समय 8–10 किग्रा गोबर की सड़ी–गली खाद प्रति पौधे की दर से गड्ढे में देना चाहिए और इतनी ही मात्रा फरवरी में देनी चाहिए। फरवरी माह में काट–छांट के बाद प्रति पौधा 10–15 किग्रा सड़ी हुई गोबर की खाद तथा 40–50 ग्राम नत्रजन, 30 ग्राम फॉस्फोरस एवं 30 ग्राम पोदाश उर्वरक देना चाहिए।

सिंचाईः– सहिष्णु स्वभाव का होने के कारण इन पौधों की अधिक सिंचाई नही चाहिए फिर भी जनवरी से मई माह तक माह में दो बार सिंचाई देने से पौधों की बढ़वार अच्छी रहती है। निराई–गुड़ाई हर सिंचाई के बाद कर देनी चाहिए।

कटाई–छंटाईः– फालसे के पौधे सर्दी की ऋतु मे यद्यपि पूरी तरह तो अपनी पत्तियां नही

गिराते फिर भी अधिकांश पत्ते झड़ जाते हैं और यही समय कटाई–छंटाई करने के लिए उपयुक्त है। यह किया आधे दिसम्बर से जनवरी माह तक की जा सकती है। प्रति तीन चार वर्ष के बाद पेड़ की कटाई–छंटाई कर देनी चाहिए। इससे पौधों में संचित खाद का फलन में उपयोग हो जाता है। करौंदा में केवल रोगग्रस्त शाखाओं को हटाना पडता है। किसी विशिष्ट कांट–छांट की आवश्यकता नहीं होती है।

पौध संरक्षण

कीट प्रबंध – फालसा का छाल खाने वाला कीड़ा– यह कीड़ा फालसा के लिए तो विशेष हानिकारक नहीं होता किन्तु पौधों पर पलकर अन्य पौधों को हानि पंहुचाता है।

करौंदा का पत्ति खाने वाला कीटः पौधों की शुरूआती अवस्था में पत्ति बचाव के लिए आयोडिन 2 मिलि./लीटर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

व्यधि प्रबंध – फालसा का पत्ति धब्बा रोग– इससे फालसे की पत्तियों पर धब्बे पड़ जाते हैं। रोगग्रस्त पेड़ो के पत्ते तोड़कर जला देना तथा ब्लाइटॉक्स 50 के 0.2 प्रतिशत घोल के छिड़काव से रोग नियंत्रित किया जा सकता है।

करौंदा का वृण रोग – इस रोग से बचाव के लिए ब्लाइटॉक्स 50 के 0.2 प्रतिशत घोल के छिड़काव करना चाहिए।

तुड़ाई एवं उपज – पौधे स्थाई जगहों पर स्थानान्तरित किये जाने के दूसरे वर्ष ही फलने लगते है। इसके पौधे अप्रैल मई में फलते है और जून में पके हुए फल उपलब्ध होते है। फल धीरे–धीरे पकते रहते है तथा सब एक साथ नही पकते, इससे थोड़े थोड़े पके फल प्रतिदिन चुनने पड़ते है। फालसा के फलों में भण्डारण क्षमता कम होती है फल तोड़ने 24 घण्टे के अन्दर–अन्दर इसका उपयोग कर लेना चाहिए। फल जब गहरे लाल या बैंगनी रंग के हो जाते है तब इनके तोड़ने की अवस्था होती है। इसी अवस्था में मिठास अधिक होती है। पांच साल के स्वस्थ पौधे से लगभग 4–5 किग्रा फल प्रति पौधे के प्राप्त हो जाते है।

करौंदा में फलन, पौधे लगाने के 2–3 वर्ष पश्चात आता है। पौधों में पुष्प फरवरी से जुलाई तक आते हैं। फरवरी वाले फूलों से फल जून में तैयार हो जाते है अतः इसमें तुड़ाई जून से सितम्बर तक संभव है। एक पूर्ण रूप से तैयार पौधा 25 किग्रा तक फल उत्पन्न कर सकता है।

*****

फल परिरक्षण का महत्व एवं लाभ

विमला डूकवाल, ममता सिंह एवं अर्पणा पारीक
एस.के.आर.ए.यू., बीकानेर

परिरक्षण का शब्दार्थ

खाद्य पदार्थ को उनकी किस्म में बिना परिवर्तन के सड़े–गले व खराब हुऐ बिना अधिक समय तक सुरक्षित रखने को ही भोजन परिरक्षण कहते हैं।

ताजे फल और सब्जियां कटाई के बाद से ही विभिन्न कारणों से नष्ट होना प्रारम्भ हो जाते हैं अतः इन्हें अधिक समय तक खाने योग्य बनाये रखने के लिये परिरक्षित किया जाना आवश्यक हो जाता है। हमारे देश में अज्ञानता के कारण 20–40 प्रतिशत खाद्य पदार्थ (फल व सब्जी) उपलब्ध होते हुए भी खराब हो जाते हैं। आज जनसंख्या की वृद्धि के कारण उपलब्ध वस्तुओं के सदुपयोग की व अधिक उत्पादन की अत्यन्त आवश्यकता है।

लाभ

1. अत्याधिक मात्रा में उत्पन्न होने के कारण उत्पादों का बाजार भाव सस्ता हो जाता है। उत्पादक यदि अधिक उत्पादन को परिलक्षित कर लें तो उसे अपने उत्पादन का अधिक मूल्य मिल सकता है।
2. आंधी, तेज हवा, पक्षियों के द्वारा काटे गये तथा गिराये गये फलों का उचित मूल्य नहीं मिल पाता। इन्हें परिरक्षण के द्वारा उन्हें उपयोगी बना कर उचित मूल्य प्राप्त किया जा सकता है।
3. परिरक्षण द्वारा बिक्री की अतिरिक्त सम्भावनाएं उपलब्ध होती है।
4. परिरक्षित सामग्री भण्डारण में सुविधा रहती है। ये वस्तुएं कम स्थान घेरती है।

फल परिरक्षण के तरीके

अ चीनी द्वारा – चीनी द्वारा भोज्य पदार्थो को संरक्षित किया जा सकता है चीनी की अधिकता से भोज्य पदार्थ को नष्ट करने वाले जीवाणुओं की वृद्धि को रोका जा सकता है, जब चीनी का गाढा घोल तेयार किया जाता है तो उसमें रसाकर्षण दबाव बढ़ जाता है। इस दबाव की वृद्धि हो जाने के कारण विभिन्न जीवाणुओं की उत्पति एवं वृद्धि रुक जाती है इससे आहार संरक्षण में सहायता मिलती है। चीनी द्वारा संरक्षण का सिद्धान्त भी नमक द्वारा संरक्षण के सिद्धान्त जैसा

ही है। नमक द्वारा संरक्षण एक शीतल प्रतिक्रिया है जबकि चीनी द्वारा संरक्षण में भोज्य मिश्रण गर्म किया जाता है। चीनी एक संरक्षणकर्ता की तरह काम करती है क्योंकि चीनी की सान्द्रता से काफी उच्च रसाकर्षण दाब पैदा होता है जो सूक्ष्म जीवाणुओं से पानी खीचकर उनकी बढोतनी को रोकता है।

चीनी द्वारा फलों को संरक्षित करने के लिये उसकी मात्रा फलों की अम्लता पर निर्भर करती है। 66 प्रतिशत चीनी का प्रयोग करना चाहिये शक्कर की मात्रा कम होने पर फफूंदी व यीस्ट के आक्रमण से फलों के रंग रुप व स्वाद आदि में परिवर्तन आ जाता है। इसके अलावा कम मात्रा में शक्कर का प्रयोग करने से खमीरीकरण की प्रक्रिया शुरू हो जाती है तथा स्वाद में भी परिवर्तन आ जाता है जैसे स्क्वेश आदि। शक्कर की मात्रा अधिक होने से शक्कर वापस जमने लगती है, जससे उसकी गुणवत्ता में परिवर्तन आ जाता है जैसे जेम, जैली आदि। इसलिये फलों का संरक्षण करते समय फलों की अम्लता व पेक्टिन की मात्रा की जांच अच्छी तरह करनी चाहिये।

जैम

जैम तैयार करने के लिये फलों को उबाल कर गूदे को उचित मात्रा में गाड़ा होने तक पकाते हैं। इस विधि में 45 प्रतिशत भाग फल का तथा 55–60 प्रतिशत भाग चीनी का होता है। जैम एक प्रकार के या दो या तीन प्रकार के फलों को मिश्रिल कर बनाया जाता है। जैम बनाने में सबसे महत्वपूर्ण बात है पैक्टिन, चीनी और अम्ल का अनुपात अगर ये तीनों पदार्थ सही अनुपात में होंगे तो बहुत स्वादिष्ट जैम बनेगा। जैम बनाते समय अम्ल (।बपक) चीनी को जमने से बचाता है। अच्छी किस्म का जैमन गहरे रंग का और दिखने में एकसार लगना चाहिये। यह बहुत कठोर नहीं दिखना चाहिये और चीनी में क्रिस्टल नहीं होने चाहिये तथा फलों में गहरी व अच्छी सुगन्ध होनी चाहिये। सेब, अमरूद, करोंदे, आम, पपीता, चीकू, नाशपती आदि से जैम बनाया जाता है। सब्जियां जैसे गाजर, चुकन्दर आदि भी जैम बनाने के लिये प्रयोग किये जा सकते हैं। जैम बनाने के लिये मुख्य बाते निम्न है –

1. अच्छी किस्म के पके फलों (न जयादा पके न थोड़े कच्चे) का चुनाव करना चाहिये।
2. बहते पानी में धोकर जरूरत के अनुसार छिल लीजिये।
3. बीज, कांटे इत्यादि अनइच्छित भाग को निकालकर छोटे टूकड़े काट लीजिये।
4. टूकड़ों को सावधानीपूर्वक मुलायम होने तक पका लीजिये।

5. एक समान गुदा प्राप्त करने के लिये बारिक छलनी या किचन मास्टर से निकाल लीजिये।

6. गुदे में चीनी और अम्ल (।बपक) मिला दीजिये। उचित मात्रा में ही चीनी का प्रयोग करना चाहिये, कंम चीनी से बने जैम में खमीर उठ कसता है।

7. उसे धीरे–धीरे पकाईये जब तक की चीनी न घुल जाऐ।

8. अन्तिम रूप में आने तक तेज आंच पर उबालिये।

9. चाहें तो एक चुटकी रंग मिला सकते है।

10. तैयार किये गये जैम को स्वच्छ कीटाणुरहीत बोतलों में भर लीजिये और ठण्डा होने के लिये कम से कम 2 घण्टे तक रखीये।

11. पिघले मोम से बोतलों को सील कर लीजिये व स्वच्छ व ठण्डे स्थान पर संग्रहित कर लीजिये।

जैम बनने के अन्तिम बिन्दू को कैसे पहचानेंगे

1. शीट टेस्ट – एक चम्मच में थोड़ी मात्रा में जैम लीजिये और ठण्डा होने दीजिये, इसे चम्मच से नीचे गिराईये। नीचे गिरते समय यदि जैम का आधार 'ट' आकार का है तो यह जैम बनने की विधि का अन्तिम बिन्दू है।

2. ठण्डे पानी से पता लगाना – कम मात्रा में जैम लिजिये व ठण्डे पानी में डाल दीजिये। यदि यह बिना बिखरे ज्यों का त्यों रहता है इसका मतलब है जैम तैयार है।

3. बर्तन की किनारी पर छोटे–छोटे बुलबुले बनना जैम तैयार होने का संकेत हैं।

4. प्लेट टेस्ट – थोड़ा सा जैम एक प्लेट में डालिये और 1/2 मिनिट रखने के बाद प्लेट को टेढा कीजिये। यदि पूरा का पूरा जैम एक साथ खिसकता है इसका अर्थ है जैम बोतल में भरने के लिये तैयार है।

5. यदि तैयार उत्पाद का तापक्रम 2200 फै. तक पहुंच जाता है इसका मतलब है जैम को और पकाने की आवश्यकता नहीं है।

6. यदि अन्तिम उत्पाद चीनी के उत्पाद का 1/2 गुना हे तो समझना चाहिये की जैम तैयार है।

जैली

जैली अर्द्ध ठोस उत्पाद है जो कि बिना रेशेवाले फलों के गूदे के साथ चीनी द्वारा बनायी जाती है। अच्छी किस्म की जैली पारदर्श आकर्षक रंग में चमक वाली तथा चम्मच से आसानी

से फैलायी और बर्तन से निकाली जा सके ऐसी होनी चाहिये।

जैली बनने के महत्वपूर्ण तत्व है पैक्टिन, चीनी, अम्ल और पानील, इन पदार्थो का अनुपात इस प्रकार होना चाहिये पेक्टिन 1 प्रतिशत, चीनी 60–65 प्रतिशत, अम्ल, 1 प्रतिशल, पानी 33–36 प्रतिशत। यदि सारी सामग्री इस निश्चित अनुपात में होती है, तो उत्तम किस्म की जैली बनायी जा सकती है।

जैली बनाने की विधि

1. स्वस्थ्य और ताजे फल लीजिये।
2. फलों को धोकर छोटे–छोटे टूकड़े काट लीजिये।
3. धीमी आंच पर मुलायम होने तक पकाईये, पानी का अनुपात फलों चुनाव पर निर्भर करता है रस वाले फलों को कठोर फलों की अपेक्षा कम पानी की आवश्यकता होती है।
4. उबाल आने के बाद ढक्कन लगाकर 35 मिनिट तक पकाईये।
5. जैली बेग या मलमल के कपड़े से गूदा और रस अलग कर लीजिये।
6. छानते समय दबाईये मत इससे गूदा रस के साथ मिल सकता है।
7. गूदे को नाप लीजिये और पेक्टिन की मात्रा के अनुसा चीनी मिला लीजिये।
8. सिट्रिक एसिड और चीनी मिलाकर गूदे को गाड़ा होने तक उबालिये, यदि तैयार उत्पाद चम्मच से गिराने पर ट की आकृति बनाता है या थोड़ा सा उतपाद ठण्डी जगह डालने पर गाड़ा ही रहता है तो यह बोतल में भरने के लिये तैयार है।
9. अधिक समय तक उबालने पर उत्पाद का रंग व सुगन्ध में परिवर्तन आ सकता है।
10. ठण्डा होना दीजिये, सील करने के लिये पिघला मोम उपरी सतह पर डाल दीजिये ढक्कन बन्द करके ठण्डे स्थान पर संग्रहित कर लीजिये।

फल संरक्षण की अन्य विधियाँ

फलों को परिरक्षित करने के लिये विभिन्न विधियों का प्रयोग किया जाता है। प्रत्येक विधि की हानियां और लाभ है। परिरक्षण की विधि का चुनाव भोज्य पदार्थ की किस्म और इच्छित तैयार उत्पादन पर निर्भर करता है। परिक्षण की निम्नलिखित विधियां है –

1. निर्जलीकरण

फल और सब्जियां सुखाना। हमारे देश में इस विधि के लिय सूर्य की रोशनी का प्रयोग किया जाता है।

2. उच्च ताप द्वारा

उच्च ताप द्वारा फल और सब्जियों का डिब्बाबन्दी बोतलीकरण, विवर्णीकरण और पास्चूरीकरण किया जाता है।

3. निम्न ताप द्वारा

हिमिकरण ओर शीत संग्रहण द्वारा ुल व सब्जियों का परिक्षण करना।

4. अम्ल और नमक द्वारा

चटनी अचार को सिरका द्वारा सॉस व केचअप को अम्ल ओर नमक के द्वारा परिरक्षित करना।

5. रासायनिक परिरक्षकों द्वारा

पोटेशियम–मेटा–बाई–सल्फेट और सोडियम बेन्जोएट मुख्य रासायनिक परिरक्षक पदार्थो के रूप मं फलों के रस, शर्बत, चटनी और अचार परिरक्षण में प्रयोग लिय जाते हैं। दोनों परिरक्षण भोजन में सूक्ष्म जीवाणुओं की वृद्धि को रोकने में सहायक है।

6. विकिरण द्वारा

इस विधि द्वारा फल एवं सब्जियों को परिरक्षित करने से वे ताजी रहती है ओर गुणवत्ता में अधिक परिवर्तन नही होता है।

7. दो या अधिक विधियों द्वारा

एक विधि की अपेक्षा दो या दो से अधिक विधियों का प्रयोग भोज्य परिरक्षण में ज्यादा प्रभावी होता है उदाहरण निर्जलीकरण से पहले विवर्णीकरण करना, फलों के शर्बत और इस को परिरक्षित करने में चीनी और रासायनिक पदार्थो का प्रयोग, अचार परिरक्षण में आंच का प्रयोग आदि।

फलों का परिरक्षण काल बढ़ाने हेतु मुख्य बिन्दू

फलों को पररिक्षित करने के लिये उनमें उपस्थित सूक्ष्म जीवाणुओं की किस्म और मात्रा के बारे में जानकारी होना आवश्यक है। भोज्य पदार्थों का संदूषण उनमें उपस्थित सूक्ष्म जीवाणुओं की मात्रा को प्रभावित करता है। अधिक मात्रा में जीवाणुओं की उपस्थिति भोज्य पदार्थों को जल्दी खराब कर देती है ऐसे पदार्थों को परिरक्षित करना भी कठिन होता है। (Aseptic Handling) स्वच्छतापूवर्क सारसम्भाल से भोज्य पदार्थों उपस्थित जीवाणुओं की [redacted] में कमी करके इनके परिरक्षण अवधि को बढाया जा सकता है।

फलो को परिरक्षित करने से पूर्व निम्नलिखित बाते अवश्य ध्यान मे रखनी चाहिये –

1 फलो के साथ काम करने से पहले हाथ, साबुन व पानी से अच्छी तरह धो लेने चाहिये।

2 कार्य करने के लिये स्वच्छ स्थान का चुनाव करना चाहिये।

3 फलो को परिरक्षित करते समय उचित उपकरणो व बर्तनो का इस्तेमाल करना चाहिये, लोहे, पीतल और ताबे के बर्तनो का प्रयोग नही करे ये भोज्य पदार्थो के साथ क्रिया कर उन्हे दूषित करते है।

4 बर्तनो और उपकरणो को साबुन तथा गरम पानी से अच्छी तरह धोना चाहिये।

5 खराब, कच्चे व अधिक विकसित फलो का चुनाव न करे। स्वस्थ, ताजे व पूर्ण विकसित फलो का ही परिरक्षण के लिये चुनाव करना चाहिये।

6 फल व सब्जियो को परिरक्षित करते समय अन्य सामग्री भी अच्छी किस्म की होनी चाहिये।

*****